केरल ज्योति

मार्च 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

वार्षिक आम सभा में मंत्री अधिवक्ता मधु.बी भाषण दे रहे हैं।

प्रो.आर.जनार्दनन पिल्लै की 15 वीं पुण्य तिथि के सम्मेलन का उद्घाटन केरल विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री एम.विजयकुमार कर रहे हैं।

डॉ.पी.लता द्वारा रचित प्रो.आर.जनार्दनन पिल्लै की जीवनी 'कठिनाध्वानन्तिन्टे विजयगाथा' के लोकार्पण का दृश्य।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61   दल : 12   अंक: **मार्च 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय	5
पद्मश्री डॉ ओमनकुट्टी : एक लघु परिचय - **अधिवक्ता (डॉ) मधु बी**	6
श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर**	7
भारतीय संस्कृति : सार्वभौमिक मूल्यों की संस्कृति - **डॉ रवींद्र कुमार**	12
नारी के विविध आयाम समकालीन हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में **डॉ लिट्टी योहन्नान**	14
निंबार्काचार्य और उनका द्वैताद्वैत दर्शन - **डॉ षीबा शरत एस**	17
जैन धर्म और महावीर स्वामी - **अरविंद कुमार यादव**	19
मृदुला गर्ग की 'मेरा' कहानी में चित्रित आधुनिकता बोध **डॉ प्रिन्सी पी ए एवं डॉ एल तिल्लै सेल्वी**	23
मुंशी प्रेमचंद कृत गबन का भाषा सौष्ठव - **अच्युत शुक्ला**	26
मीड़िया और हिंदी साहित्य - **शरण्या एस एस**	30
तुम्हें बदलना ही होगा : अपमान के दर्द से मुक्ति की ओर दलित नारी का बदलाव - **दिव्या एम एस**	33
अंबिकासुतन माङ्ङाड़ की कहानियों में प्राकृतिक परिवेश **डॉ ज्ञानेश्वरी सी**	35
जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद इत्यादि : चुनौतियाँ एवं समाधान **डॉ अशोक कुमार**	37
हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान - **डॉ पूर्णिमा आर**	41
भाषा कौशल : रूपांतरण प्राप्त करने की प्रभावी कुंजी **लेफ्टिनेंट मेधा तड़वी और प्रो दीप्ति ओझा**	43
देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना**	47
ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**	48
प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम**	50

मुखचित्र : पद्मश्री डॉ के ओमनक्कुट्टी अम्मा

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- ***आजीवन चंदा : रु. 4000/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 400/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
मार्च 2025

संपादकीय

पद्मश्री डॉ ओमनकुट्टी को हार्दिक अभिवादन

संगीत मानवता को प्राप्त जगदीश्वर का एक विशिष्ट अमूल्य वरदान है जो भाषा, जाति, धर्म और राष्ट्रों की सीमाओं के परे होकर सब को एकात्मकता की सुनहरी डोर से बाँधने में सक्षम है। केरल हिंदी प्रचार सभा को यह एक सुखद समाचार है कि केरल की प्रिय पुत्री डॉ के ओमनक्कुट्टी वरदायिनी आट्टुकाल देवी के मंदिर के ट्रस्ट के प्रतिष्ठित अंबा पुरस्कार एवं भारत सरकार की ओर से पद्मश्री अलंकरण से विभूषित हुई है। ओमनक्कुट्टी जी का केरल हिंदी प्रचार सभा के साथ अनन्य संबंध है और आप वर्षों से सभा के साथ स्थायी संबंध बनाये रखती आ रही हैं। विशेष रूप से सभा की पूर्वाध्यक्षा डॉ एस तंकमणि अम्मा, केरल ज्योति के पूर्व संपादक के जी बालकृष्ण पिल्लै और केरल ज्योति के वर्तमान मुख्य संपादक प्रो डी तंकप्पन नायर के साथ उनका आत्मीय संबंध रहा है। डॉ एस तंकमणि अम्मा तो ओमनक्कुट्टी जी के लिए अपनी सहोदरा सदृश है। सभा अत्यंत कृतज्ञतापूर्वक उस घटना का स्मरण करती है जब कुछ वर्षों के पहले ओमनक्कुट्टी जी ने सभा के लिए हिंदी के छात्रों अध्यापकों और हिंदी प्रेमियों को दृष्टि में रखते हुए हिंदी की प्राचीन और आधुनिक कविताओं को स्वरबद्ध करके कासेटों के निर्माण में अपनी संस्था संगीत भारती का सहयोग उपलब्ध कराया था। इसके पीछे डॉ एस तंकमणि एम्मा और ओमनक्कुट्टी जी की अटूट मैत्री का भी विशिष्ट योगदान रहा है।

ओमनक्कुट्टी जी द्वारा स्थापित संगीत भारती नामक संस्था केवल संगीत के उपासकों का आश्रय ही नहीं है बल्कि संगीत के शोधार्थियों के लिए सहायक भी है। आपका पूरा परिवार संगीत को समर्पित है। आपके पिताजी विख्यात संगीतज्ञ मलबार गोपालन नायर, माताजी संगीत की विदुषी कमलाक्षी अम्मा, बड़े भाई एम जी राधाकृष्णन एवं छोटा भाई एम जी श्रीकुमार संगीत निर्देशन और पार्श्व गायन में विशिष्ट व्यक्तित्व हैं। ओमनक्कुट्टी की शिष्य संपदा में के एस चित्रा, बी अरुंधती, के एस हरिशंकर, मंजरी और ए एस रश्मी आदि उल्लेखनीय हैं। केरल ज्योति परिवार की प्रार्थना है कि जगन्नियंता आपको सुस्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करें और आपका जीवन सब प्रकार से मंगलमय हो।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

पद्मश्री डॉ ओमनकुट्टी : एक लघु परिचय

अधिवक्ता (डॉ) मधु बी

अपना जीवन संगीत के लिए समर्पित, संगीत की उपासिका पद्मश्री डॉ के ओमनक्कुट्टी का जन्म आलप्पुष़ा जिले के हरिप्पाटु में 1943 में हुआ जिनका पूरा परिवार संगीत से संबंध रखनेवाला है। ओमनकुट्टी जी के पिताश्री स्व. मलबार गोपालन नायर जो विख्यात कर्नाटिक संगीत के विद्वान तथा प्रशस्त हार्मोनियम वादक के रूप में विख्यात थे। उनकी माताजी कमलाक्षी अम्मा भी संगीत की विदुषी थीं। उनका बड़ा भाई एम.जी राधाकृष्णन और छोटा भाई एम जी श्रीकुमार है जो संगीत जगत में जाने माने व्यक्तित्व हैं।

स्नातक उपाधि पाने के बाद ओमनकुट्टी जी ने तिरुवनंतपुरम में स्थित संगीत अकादमी से गानप्रवीणा पाठ्यचर्या की। कोर्स की सफल समाप्ति के पश्चात तिरुवनंतपुरम में महाराजास कॉलेज में संगीत विभाग में प्राध्यापक के रूप में काम किया। पूरे समर्पण के भाव से कार्यरत ओमनक्कुट्टी जी के अनेकों शिष्य बाद में संगीत के क्षेत्र के काफ़ी मशहूर हुए हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं के एस चित्रा, बी अरुन्धति, के एस हरिशंकर, मंजरी, के एस रमणी आदि।

ओमनक्कुट्टी जी के दोनों भाई एम जी राधाकृष्णन तथा एम जी श्रीकुमार फिल्मों में संगीत निर्देशक और पार्श्वगायक के रूप में अत्यंत प्रशस्त हैं।

डॉ ओमनक्कुट्टीजी ने केरल विश्व विद्यालय से संगीत में पीएच डी की उपाधि पायी और उन्होंने संगीत में एम ए में और बी ए में प्रथम रैंक पाया है। ओमनकुट्टीजी की शिष्य-संपदा बड़ी तादाद में है। उन्होंने तीन हज़ार से अधिक संगीत की महफिलों में गायन कर सहृदयों को आनंद में डुबाया है। संगीत की सेवा एवं श्रीवृद्धि के लिए उन्होंने संगीतभारती नामक एक संस्था की स्थापना की है, जहाँ संगीत के शिक्षण के अतिरिक्त नाना प्रकार के शोधकार्य भी चलाए जा रहे हैं जैसे कि संगीत के द्वारा चिकित्सा का काम (Music Therapy) और इसके लिए उन्हें पंकज कस्तूरी आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज का पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि केरल सरकार के अंतर्गत सामाजिक न्याय विभाग के सहयोग से पूजप्पुरा और पुलयनारकोट्टा के वृद्ध सदनों में रहनेवालों को ओमनक्कुट्टीजी की सेवायें प्राप्त हो रही हैं। हाल ही में प्रशस्त आट्टुकाल देवी मंदिर ट्रस्ट के अंबा पुरस्कार से आप सम्मानित हुई हैं। इस लेख का उद्देश्य उनकी व्यापक सेवाओं का वर्णन नहीं है बल्कि सिर्फ उनका एक लघु परिचय देना है। जगदीश्वर उन्हें दीर्घ आयु एवं अच्छा स्वास्थ्य देकर कर्मण्य बनायें जिससे उनका जीवन दूसरों के लिए लाभदायक हो।

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

बाईसवाँ सर्ग

आजन्म संन्यासी और आजन्म क्रांतिकारी

1. पहचाना श्रीनारायण गुरु ने समाज को सही रूप में
और वे न पड़े कल्पनाओं या सपनों के पीछे कभी
सामाजिक परिवर्तन को उनकी थी विचारधारायें सुदृढ़ और
महत्व रखती थीं वे अपनी दार्शनिक मौलिकता की वजह।

2. कोई नहीं है उनके सानी केरल के सांस्कृतिक इतिहास में और
समाज में भौतिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में हो रहे अपमान के
विरुद्ध उनकी प्रतिक्रियायें थीं सौम्य किंतु थी शक्तिशाली
इसलिए लगा जनता को कि वे थे नई क्रांति के सच्चे उद्घोषक।

3. युगानुसार आवश्यकता के निर्वहण को होता है अवतार
जो करते हैं दूर समूह के हृदयगत अपचय को, फिर करते हैं
स्थापना नये धर्म की करने को जनोद्धार और हुआ जन्म
श्रीनारायण गुरु का अग्रदूत रूप में आध्यात्मिक क्रांति के।

4. ईसा के युग में आवश्यकता थी अत्यधिक स्नेह की
इसलिए प्रमुखता दी उन्होंने स्नेह को अपने वचनों में
ज़रूरत थी भाईचारे की नबी के युग में इसलिए
देते थे वे सब को संदेश भातृत्व भाव का।

5. बुद्ध के जमाने में था हिंसा का बोलबाला
सब कहीं इस कारण उन्होंने लक्ष्य कर लोगों के अमन-
चैन को किया प्रचार अहिंसा का और बल दिया हिंसा
छोड़ने पर और यों होता है कोई लक्ष्य सब अवतारों का।

6. आजन्म संन्यासी और आजन्म क्रांतिकारी थे गुरुदेव
और करते थे अगवानी निरंतर मुक्ति दिलाने निम्न वर्ग को
गुरुदेव-मन को अस्वस्थ करती थी समाज की जीर्णतायें और
किया निर्णय उन्होंने मुक्त करने को हिंदू धर्म को रूढ़ियों से।

7. जो शिव-प्रतिष्ठा की थी उन्होंने अरुविप्पुरम में वह
थी उनकी आध्यात्मिक एवं तपःशक्ति की एक झाँकी और
करने पर प्रतिष्ठा जब प्रश्न उठाया ब्राह्मण पुरोहितों ने
तो उनका दिया उत्तर बन गया अमिट इतिहास के पन्नों पर।

8. कहा था उन्होंने कि मैंने की थी प्रतिष्ठा ईष़्वा-शिव की
न कि ब्राह्मण शिव की ऐसा कहकर दी चुनौती पुरोहिताई की
उन्होंने न दिया शाप वचन किसी पर या न निकली
उनके मुँह से क्रोधभरी वाणी अपने निंदकों के प्रति भी।

9. इस नवीन क्रांति की विशेषता थी उसका सौम्य भाव
और उसकी अहिंसात्मक और शान्तियुक्त रीति की
गुरुदेव का यह महत् प्रभाव खूब चर्चित हुआ जन-मन में
क्रांति का भद्रदीप जलाके दूर किया अज्ञान का अंधकार।

10. गुरुदेव की आज्ञा से आलुवा में स्थापित अद्वैत आश्रम
और मठ की दीवारों पर एक विज्ञापन है जिस में कहा
गया है कि मानव की एक जाति एक धर्म और एक ईश्वर है
और उसकी अन्य कोई जाति धर्म या ईश्वर नहीं है।

11. जो भी अवसर उन्हें मिलते समझाने को लोगों को
जाति की निस्सारता को देते थे वे उपदेश उनको
किन्तु कभी भी इसके लिए न कहते थे कोई अपशब्द
बोलते थे वे शांतभाव से और करते भी थे वैसे ही।

12. एक बार हुई एक रोचक घटना रेलयात्रा के दौरान
उस यात्रा में परिचित हुए एक व्यक्ति ने पूछा उनसे कि
आपका क्या है नाम तो दिया उत्तर कि बुलाते हैं नारायण
और सहयात्री ने फिर पूछा कि जाति में आप कौन हैं?

13. गुरुदेव ने पूछा उससे कि क्या मालूम न होता देखने पर
प्रत्युत्तर पाकर कि न मालूम होता तो मुस्कान सहित
बताया उन्होंने कि देखने पर जिसे मालूम नहीं होता उसे
सुनने पर कैसे होगा मालूम और निरुत्तर हुआ सहयात्री।

14. गुरुदेव के आदेशों का पालन करना होता है उनके
शिष्यों को भी और वे जो पालन करते थे शिष्यों को भी
करना है उनका पालन और शिवगिरि आश्रम में हुआ था एक दृष्टांत
इसी विषयक और उनके संकल्प में आश्रमवासी हो आदर्शनिष्ठ।

15. चारी नामक एक युवक हुआ आश्रम का अंतेवासी जो
शिष्यत्व ग्रहण करके गुरुदेव का रहने लगा शिवगिरि के
आश्रम में ब्रह्मचारी के रूप में किन्तु हुए कई आरोप
उसके विरुद्ध और अंत में पहुँचे गुरुदेव के कानों में भी।

16. गुरुदेव ने समझ लिया कि यह आरोप सही है और बुलाया
चारी को और कहा यों कि चारी योग्य नहीं है ब्रह्मचारी
होने को इसलिए ब्रह्मचारी का 'ब्रह्म'यहाँ छोड़कर चारी जा
सकते हैं यही होगा ठीक स्वयं को और आश्रम को भी।

17. केरल के प्रसिद्ध बुद्धिवादी कुट्टिप्पुष़ा कृष्णपिल्लै ने प्रकाश
डाला है निरीक्षण करके गुरुदेव के जीवन पर कि उन्होंने
अन्य धर्माचार्यों की भाँति नहीं बाँटा था जीवन को भौतिक एवं
आध्यात्मिक, बल्कि मानते थे दोनों हैं जीवन में अनिवार्य तत्व।

18. सदा आनंदमय थे गुरुदेव और थे अपने आश्रितों को सखा
बंधु व करुणामय और था उनका लक्ष्य बनाना मानव को
श्रेष्ठ मानव और फ़ैलाना उनमें समभावना और इसके लिए
किया था उन्होंने आध्यात्मिकता का उपयोग सामूहिक कल्याण को।

19. गुरुदेव के आदर्श और विचार हैं प्रासंगिक वर्तमान
समाज में भी जहाँ आज भी अधःस्थितों को करना पड़ता है
चुनौतियों का सामना नौकरी शिक्षा के और अन्य क्षेत्रों में भी
इस कारण उच्च विचार गुरुदेव के हैं सब को मार्गदर्शक।

20. अपने काव्य अद्वैतदीपिका में अत्यंत महत्व रखता है
गुरुदेव का यह कथन कि यदि देखना संभव होना है तो
केवल आँखें होने से नहीं होता संभव अपितु अपनी आँखों को
खोलकर रखना है अन्यथा न प्रयोजन है आँखें होने से।

21. भीतर का ज्ञान होने को बाधा है भीतरी आँखों का
बंद रहना और ज्ञान का रहस्य समझने को चाहिए
भीतरी आँखों को खोलना और यह सत्य जान लो कि
न मिलता किसी को ज्ञान का रहस्य आप से आप।

तेईसवाँ सर्ग

सामाजिक कुरीतियों से अशांत गुरुदेव

1. क्षुब्ध हुए थे वे तत्कालीन जीवन के रीति-रिवाज़ों से
किया उन्होंने विरोध उन धार्मिक संस्कारों का जिनसे हुई
रुकावट निम्न वर्गों की आध्यात्मिक और लौकिक उन्नति की
और थी अप्राप्य दलित लोगों को सुख-सुविधायें भी।

2. सामाजिक कुरीतियों से अशांत था गुरुदेव का मन
और अशांत होने की प्रवृत्ति होती थी बचपन में ही
काफ़ी जोशीला लड़का थे वे बचपन में नटखट भी थे
कुछ बातों में और उनकी एक खास शरारत का दृष्टांत भी है।

3. फल और मिठाइयाँ जो पूजा के लिए रखते थे घर में
शुरू होने के पहले ही पूजा उन्हें उठाकर खा लेते थे वे
तब ऐसा कहते थे वे कि अगर मैं प्रसन्न हो जाऊं तो
ईश्वर भी प्रसन्न हो जाएँगे तब निरुत्तर होते घर के लोग।

4. अगर रोकने का प्रयास करता कोई तो होता पराजय
और कहीं देखते अस्पृश्यता के शिकार बने निम्न वर्ग के
लोगों को बालक दौड़ जाते उनके निकट और उन्हें
छूने के बाद बिना नहाये घर की रसोई में घुसते फ़ौरन।

5. फिर तुरन्त छू लेते थे स्त्रियों को और ज़्यादा शुद्धता का
आचरण करते पुरुषों को भी और करते थे ऐसा गुरुदेव अपने
बाल्य में और घरवालों को कई बार नहाने की मुश्किल में
डालकर मन बहलाव करने का दृष्टांत भी हैं प्रचलित।

6. श्रीनारायण गुरु के प्रिय शिष्य व कविप्रमुख कुमारनाशान का
मत है कि शायद बचपन की अशांति, जोशीलापन, नटखटपन
निषेधात्मक मनोभाव रूढ़ियों के प्रति और दूसरों को हराने
के सामर्थ्य ने बनाया उन्हें कालांतर में समाज का मार्गदर्शक।

7. विद्यमान था उनमें सौम्यता व शान्तता का उदात्त भाव
और उनके पीछे का साहस भी पहचान गये लोग शीघ्र ही
जब पहली बार उनके मुँह से ईष़्व शिव की बात निकली
तब पुरोहित लोग स्तब्ध हुए और पीछे हट गये निरुत्तर होकर।

8. ईष़्व शिव का प्रतिष्ठा-कर्म हो गया चिरस्मरणीय और
इतिहास में तब से शुरू हो गयी एक अनहोनी और गुरुदेव के

इस महान प्रयास से हो गयी एक नयी आध्यात्मिक क्रांति
और पहुँचाया शिव को अवगणित अवर्ण दलित वर्ग तक।

9. सच्चे मानव प्रेमी और सच्चे सत्यान्वेषी गुरुदेव मानते
नहीं थे वर्णभेद और किया उन्होंने दृढ़ संकल्प तोड़ने का
वर्ण-विधानों को और लिया निर्णय भी कि मनुष्य को
कई स्तरों में बाँटने का वर्ण भेद अंत करने का करें प्रयत्न।

10. एक ज्ञानी थे वे और देते थे दूसरों को आत्मज्ञान और इस
विषय में मान्यता है भारत की थियोसोफिकल सोसाइटी की
कि श्रीनारायण गुरु योग में है पतंजलि और बुद्धि में शंकर
विनम्रता में हैं मोहम्मद और शील में हैं ईसामसीह।

11. बार-बार स्पष्ट किया था गुरुदेव ने निरर्थकता जाति-
व्यवस्था की और अपनी रचना जाति-निर्णय कविता में जाति
निषेध पर दिया संदेश कि मानव की जाति है मानवता
और हो एक जाति एक धर्म और एक ईश्वर मानव का।

12. कहा उन्होंने कि संपूर्ण मानव वर्ग है एक ही जाति का
और जन्म ले रहे हैं ब्राह्मण और चांडाल इसी नरजाति में
और पराशर महर्षि का जन्म धीवर कन्या सत्यवती
से और जन्म व्यास और पराशर का चंडालिका से।

13. इसलिए गुरुदेव की दृष्टि में मानव की जाति है मानवता
जिस तरह गायों की जाति है गोत्व और भ्रम में पड़कर
करते हैं लोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य चांडाल जैसी संकल्पना किंतु
गुरुदेव की दृष्टि में है एक जाति एक धर्म एक ईश्वर मनुष्य का।

14. सचमुच सनातन धर्म की घोषणा का पुनः कथन
था गुरुदेव द्वारा किया गया उद्घोष एक जाति एक धर्म
एक ईश्वर मनुष्य का जिसमें संकेत है समभावना की दृष्टि
जिसको पूर्व में किया था संकेत संत कवि कबीर ने।

15. कहा था कबीर ने कि जाति न पूछो साधु की, पूछ
लीजिए उनसे ज्ञान-विषयक बातें, मोल कीजिए तलवार का
पड़े रहने दीजिए म्यान को ऐसा कह के कबीर ने बताया
सबको जाति की निस्सारता और ज्ञान की महिमा को।

16. जीवन पारावार का अपार किनारा ढूँढते सच्चे मानव प्रेमी
गुरुदेव वर्णभेद को कभी न मान सके और उनकी दृष्टि में
एक सुदृढ़ किला है वर्णभेद जिसके भीतर लोगों को
बाँध रखा था कई खानों में और है ज़रूरत सुधारों की।

(क्रमशः)

भारतीय संस्कृति : सार्वभौमिक मूल्यों की संस्कृति

डॉ रवींद्र कुमार

भारतीय संस्कृति सनातन मूल्यों पर आधारित है। सनातन मूल्य शाश्वत हैं। इसीलिए, इन मूल्यों से जुड़े रहना अपरिहार्य है। ये सर्वकालिक और सदा प्रासंगिक हैं। सर्वकल्याणकारी हैं। व्यक्तिगत से सार्वभौमिक स्तर तक व्यवस्था के सुचारु संचालनार्थ इन सनातन-शाश्वत मूल्यों से मानवता अपने को पृथक नहीं कर सकती। हजारों वर्षों से विशुद्धतः सनातन मूल्यों से बंधी भारतीय संस्कृति किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना वृहद् मानव-कल्याण को समर्पित रही है। भारतीय संस्कृति पर बारम्बार आक्रमण हुए। आक्रान्ताओं-आततायियों-धर्मान्धों, आन्तरिक व बाह्य, दोनों, ने हिन्दुस्तान के मूल सांस्कृतिक स्वरूप को छिन्न-भिन्न करने के अनेक प्रयास किए। लेकिन वे सदैव ही विफल हुए। भारतीय संस्कृति का वैभव तथा गौरव अक्षुण्ण है। अपने मूल स्वरूप में भारतीय संस्कृति सारे संसार के लिए आज भी अनुकरणीय है।

भारतीय संस्कृति जिन आधारभूत सनातन-शाश्वत मूल्यों अथवा प्रमुख विशिष्टताओं पर आधारित है, उनमें एक ही स्रोत से उत्पन्न या प्रकट प्राणिमात्र के प्रति सक्रिय सद्भावना रखना, स्वाभाविक मानव-समानता को स्वीकार करना, वृहद् सजातीय सहयोग और सौहार्द द्वारा नित-नूतन करने के दृढ़ संकल्प के साथ ही समावेशी भावना रखते हुए, अनेकता में एकता के साथ विकास मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ना सम्मिलित है। ये ही सनातन मूल्य भारत की संस्कृति की वे प्रमुख विशेषताएँ भी हैं, अथवा भारतीय संस्कृति के वे आधारभूत गुण हैं, जिसके बल पर वह इस देश की एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने का मार्ग प्रशस्त करती है। डॉ भीमराव अम्बेडकर जैसे व्यक्तित्त्व ने भी न केवल भारतीय संस्कृति के इस वास्तविक तथ्य को स्वीकार किया, अपितु भारत की संस्कृति को अद्वितीय और महान मानते हुए हिन्दुस्तान के राष्ट्रवाद को भी इसी के दर्पण में देखा। डॉ अम्बेडकर (जीवनकाल: 1991-1956 ईसवीं) ने कहा था, इस (भारतीय) प्रायद्वीप को छोड़कर संसार का कोई देश ऐसा नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से ही सुगठित नहीं हैं, अपितु हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट है, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है।

अति कठिन समय में, जब भारत विदेशी शासनाधीन था, उस समय भी भारतीय संस्कृति ने देश में राष्ट्रवाद की अलख जगाने और देशवासियों को अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष हेतु एकबद्ध करने में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। 15 अगस्त, 1947 ईसवीं को अँग्रेजी दासता से मुक्ति के उपरान्त सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में हिन्दुस्तान के एकीकरण का विशाल कार्य एक बड़ी सीमा तक, जैसा कि मेरा मानना है, देश की साझी सांस्कृतिक विरासत, जो विभिन्न स्रोतों में भारत की एकता और इसकी आवश्यकता का आह्वान करती है, के कारण ही सम्भव हो सका। इस वास्तविकता को स्वयं सरदार वल्लभभाई पटेल के एक अपील के समान उस वक्तव्य से भली-भाँति समझा जा सकता है, जिसे उन्होंने 5 जुलाई, 1947 ईसवीं को भारत की भौगोलिक-राजनीतिक एकता के महान यज्ञ को प्रारम्भ करते हुए जारी किया था।

अपने ऐतिहासिक वक्तव्य में सरदार पटेल ने कहा था कि यह देश अपनी संस्थाओं के साथ यहाँ बसने वाले लोगों की गौरवशाली विरासत है। यह एक दुर्घटना है कि कुछ (देशी) राज्यों में रहते हैं और कुछ ब्रिटिश भारत में, लेकिन सभी समान रूप से इसकी संस्कृति (जो विविधताओं में एकता की प्रतीक है) और चरित्र का भाग हैं। हम सब रक्त और भावनाओं के साथ बंधे हुए हैं...कोई भी हमें खण्डों में विभाजित नहीं कर सकता है; हमारे मध्य कोई अगम्य अवरोध स्थापित नहीं किया जा सकता है...मैं अपने मित्रों, (देशी) राज्यों के शासकों और लोगों को आमंत्रित करता हूँ (कि वे) एक संयुक्त प्रयास हेतु मित्रता और सहयोग की भावना के साथ आगे आएँ...अपनी मातृभूमि (उसकी एकता, अखण्डता, पुनर्निर्माण, सुरक्षा और समृद्धि) हेतु साझी निष्ठा से प्रत्येक की भलाई के लिए कार्य करें।

साथ ही, विचारों में तालमेल (दृष्टिकोण सामंजस्य), सहनशीलता, शुद्ध हृदयता और प्रत्येक सर्वकल्याणकारी व अच्छे विचार को हर स्रोत से (भले ही वह बाह्य भी हो) स्वीकार करने एवं अपने में समाहित करने की प्रकृति (जो मूल भारतीय दर्शन के केन्द्र में विद्यमान है एवं जिसने हिन्दुस्तानी संस्कृति को भी अत्यधिक प्रभावित किया) भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशिष्टताओं में सम्मिलित हैं। यही कारण है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम' के साथ ही 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सर्वँ शान्ति' तथा 'लोकानुकम्पाय' जैसे सर्वकल्याणकारी उद्घोष, एवं 'जियो और जीने दो' जैसी अद्वितीय कामना भारतीय संस्कृति के प्रमुख सन्देशों के रूप में प्रकट होती है। विशेष रूप से, इन्हीं विशिष्टताओं के कारण भारतीय संस्कृति समस्त संसार के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी। विश्वभर के विभिन्न भागों के लोगों ने सहिष्णु, सहनशील और समावेशी संस्कृति के देश भारत में अपना सुरक्षित और विकासोन्मुख भविष्य देखा। गत अनेक शताब्दियों में विश्व के अनेक देशों के वे मानव-समूह समय-समय पर भारत-भूमि पर पहुँचे, जिनके अस्तित्व पर स्वयं उनके अपने ही देशों में प्रश्नचिह्न लगा था; जिन्हें अपनी-अपनी जन्मभूमि पर उत्पीड़ित किया गया और उन्हें गम्भीर रूप से प्रताड़ित होना पड़ा था। ऐसे लोग भारत जब पहुँचे, तो इस देश की संस्कृति ने उन्हें आत्मसात कर लिया। उन्हें भारत-भूमि पर प्रेम और सम्मान मिला। उनकी परम्पराओं, रीतियों और मान्यताओं को पूरी सुरक्षा मिली। उन्हें भी फलने-फूलने के समान अवसर मिले।

सनातन-शाश्वत मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति की शक्ति अथाह है। देश की एकता के निर्माण व राष्ट्र के विकास में, और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की प्रतिष्ठा स्थापित करने में इसकी भूमिका अतिमहत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति अपने अनुयाइयों से उक्त उद्घोषों के अनुरूप सनातन-शाश्वत मूल्यों पर अडिग रहने की अपेक्षा रखती रही है। इन मूल्यों की रक्षा के लिए समर्पित होकर व्यवहार-संलग्नता हेतु आह्वान के साथ मार्गदर्शन देती रही है। भारतीय संस्कृति का आज भी विशेष रूप से हिन्दुस्तानियों के लिए प्रबल कामना के साथ यही निर्देश है। भारतीय संस्कृति के आह्वान को हमें अपने हृदयों में उतारना है, इसके मार्गदर्शन में, इसके निर्देशानुसार आगे बढ़ना है, और भारत को विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित करना है।

(पद्मश्री और सरदार पटेल राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित डॉ रवीन्द्र कुमार भारतीय शिक्षाशास्त्री एवं मेरठ विश्वविद्यलय, मेरठ (उत्तर प्रदेश) के पूर्व कुलपति हैं।)

नारी के विविध आयाम समकालीन हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में

डॉ लिट्टी योहन्नान

सारांशः किसी स्थापित सत्ता को विस्थापित करना या उसके समक्ष खड़े होने की बात विमर्श है। नारी विमर्श के सन्दर्भ में स्थापित सत्ता पितृसत्तात्मक पुरुष प्रधान समाज है जिसके समकक्ष नारी खड़ी होना चाहती है। दुसरे शब्दों में नारी विमर्श नारी के अस्तित्व संपन्न होने की प्रक्रिया है। नारी समाज में जितने खंडों और उपखंडों में बांटी गयी है, उस विभाजन के विरुद्ध एक समग्र पहचान, शक्ति का बोध और सत्ता का रहस्य जानने की आकुलता है 'नारीवाद'। इसी प्रयत्न से नारी की नियति में बदलाव आता है।

मूल शब्द : विमर्श , नारी ,आयाम, नारीवाद

प्रस्तावना : हिंदी साहित्य में नारी मुक्ति एक संगठित आन्दोलन का रूप सत्तर के बाद ही धारण करता है। इसका मूल कारण स्त्री - शिक्षा का प्रसार था। शिक्षित नारी अपने स्वत्व को पहचानते हुए अपने शोषक तत्त्वों के खिलाफ संघर्ष करने लगी। उनके इस सघर्ष को प्रश्रय देनेवाला साहित्य है नारीवाद साहित्य। नारी विमर्श नारीवाद का विकसित रूप है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है। शोषण के विरुद्ध छुप रहने के लिए य निष्क्रिय रहने के लिए वह तैयार नहीं है। शोषण के विरुद्ध अपना सख्त विद्रोह प्रकट करने में वह हिचकती नहीं।

समकालीन नारीवाद उपन्यास की एक अन्य विशेषता है स्वयं नारियों का उपन्यास रचना के क्षेत्र में प्रवेश। विगत दो दशको में महिला लेखिकाओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। यह वृद्धि केवल संख्यात्मक न होकर गुनानात्मक भी रही है।

"व्यवस्था को तोड़नेवाली औरत को समाज सौ कोड़े लगाता है वहाँ पुरुष को मंच पर क्रन्तिकारी कहकर बैठाता है। लेकिन मुझे रोती हुई औरत नहीं अच्छी लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुझुलाहट होती है। यह क्या घुट-घुट कर मरना।"[1] यह स्त्री विषयक विचार है प्रभा खेतान के। इनके लेखन का सिलसिला अस्सी के दशक में शुरू हुआ ज्ञान तथा अनुभव के संचित भंडार को लेकर लिखने वली यह लेखिका एक अदभुत व्यक्तित्व की स्वामिनी है। प्रभा खेतान के साहित्य का मूल बिन्दु है - व्यक्ति के अस्तित्व एवं गरिमा का प्रश्न । प्रभा खेतान लिखती है - "मेरे जीवन का मूल स्वर व्यक्ति की अस्मिता का सवाल है , मानवीय गरिमा का सवाल है और मैं यह दृढ़ विश्वास करती हूँ कि आदमी की गरिमा किसी भी बाढ़ या विचार के कारण कुंठित न हो यानि विकास के क्रम में कहीं आदमी बौना न रह जाये।"[2] लेखिका की यह अस्मिता का स्वर निजत्व के बहार एक विशाल रूप लेकर समष्टि के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए उन्हें आदर्श की स्वप्निलता से दूर, यथार्थ के तीखे जटिल और त्रासद रूपों का चित्रण ही अभीष्ट रहा है। प्रभा खेतान ने आर्थिक स्वतंत्रता को स्त्री मुक्ति का प्रथम सोपान माना है। वे स्त्री को पुरुष की अनुचित दासता त्यागकर अपनी एक अलग पहचान बनाने को उद्यत करती है। छिन्नमस्ता एक ऐसी स्त्री की संघर्षगाथा है जो इस पुरुष के सत्तात्मक रूढिग्रस्त समाज के विरुद्ध खड़ी होकर अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती है।

छिन्नमस्ता की नायिका प्रिया स्त्री होने की जकडनों के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत है । स्वयं होने तक की यात्रा तय करती है । "प्रिया के रूप में लेखिका ने हमें एक ऐसी बोधिक बनावट वाली नायिका दी है जो अपने अनुभव को जीती भी है और अपने को अलग हटाकर उसका विश्लेषण भी करती है । उसकी यह क्षमता उसके बयान को मात्र एक निजी व्यथा कथा नहीं रहने देती । स्त्री की वैश्विक स्थिति के बारे में एक विश्वसनीय बयान बना देती है।

ज़िन्दगी में वह स्वयं अपनी सृष्टा बनती है और इसलिए अंत में बिना किसी क्लेश या विद्रोह के पीछे मुड़कर देखते हुये कह पाती है कि सबकुछ अच्छा हुआ अन्यथा इस चुनौति के बिना मैं अपनी ज़िन्दगी को एसे नहीं रच पाती।"[3] छिन्नमस्ता में आज के समाज की जागृति और प्रबुद्ध नारी व उसके अहं की बात लेखिका ने उठाई है। परंपरागत स्त्री की अपनी अस्मिता की लडाई लड़ते-लड़ते ख़त्म होकर व्यवसायी प्रिय के रूप में जन्म कथा का अंत नहीं बल्कि प्रारंभ है।

दांपत्य संबंधों में विषमताओं के कारण, आधुनिक समाज में पति-पत्नी के संबंधों को रद्द करने की व्यवस्था की गई जिसे कानून की भाषा में तलाक कहा गया है। "तलाक के माध्यम से पति-पत्नी अपने विघटनशील दाम्पत्य संबंधों को तोड़कर मुक्त हो सकते हैं । तलाक की प्रणाली विवाह को रद्द करने की क़ानूनी प्रणाली है ।"[4]

पति - पत्नी का जब सम्बन्ध बिगड़कर दोनों का एक ही छत के नीचे रहना असंभव हो जाता है तब तलाक एक विकल्प है। समकालीन नारीवाद उपन्यासों में तलाक के प्रति नारी की इस नई दृष्टि ही व्यक्तहुई है। आधुनिक नारी मरे हुए संबंधों को ढ़ोने के लिए तैयार नहीं है। छिन्नमस्ता की प्रिया कहती है , "प्रेम की कोई सीमा नहीं। एक सुखी वैवाहिक जीवन से अच्छा कुछ नहीं , मगर कितने लोगों को यह नसीब होता है? फिर मरे हुए संबंधों को ढ़ोने की जरूरत उठाकर फेंक देना चाहिए। बड़ा हल्का लगता है जब ज़िन्दगी स्वयं किसी और रस से अपना प्याला लबालब भर लेती है।"[5]

'एक ज़मीन अपनी' में हरिन्द्र ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि ऐसी स्त्रियों का भी आभाव नहीं है जो किसी दूसरी स्त्री के तलाक के निर्णय से प्रभावित होती है। साथ ही तलाक के प्रति नारी की दृष्टि बदलने की जरूरतों पर भी वह ज़ोर देता है। वह अंकिता से कहता है , "स्त्रियाँ तुम्हें ऐसी मिलेंगी, जो परंपरागत दमन और संकीर्णता की सडन के खिलाफ विद्रोह तो करना चाहती है मगर आत्मविश्वास की कमी या अन्य निजी मजबूरियों के चलते ज्यादतियों का प्रतिवाद नहीं कर पाती.... मगर जब किसी स्त्री को अपने पति के अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध, मोर्चा बांध पाती है तो खूब उत्प्रेरित होती है, उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाती क्योंकि वे उन स्त्रियों के संघर्ष में अपनी लडाई को मूर्त होता पाती है यानी अभी हमारी स्त्री को रूढ़ मानसिकता से मुक्तहोना शेष है ....।"[6]

स्त्री देह का प्रश्न स्त्री प्रश्नों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देह के प्रति विचारवान होना , स्त्री को देह पर अपना अधिकार जहाँ स्त्रीवाद का आधार प्रश्न रहा है वह साहित्य में यह भी कहा जाता है कि "दुनिया की शायद ही कोई ईमानदार नारी कथा हो जो अंतत सेक्स कथा न हो।"[7] स्त्री मन मस्तिष्क और मेधा के स्थान पर देह से परिभाषित और पहचानी जाती रही है। विश्व साहित्य स्त्री देह से प्रेम और स्त्री देह के प्रति घृणा के विपरीत खांचों में बॉटा अवश्य देखा जा सकता है किन्तु केंद्र में स्त्री की देह ही रही है। स्त्री देह के परिप्रेक्ष में समकालीन कथाकार राजकिशोर अपने उपन्यास 'तुम्हारा सुख' की नायिका मालविका को अपने देह के निर्णय में स्वतंत्र पाते हैं। "यह देह उसकी अपनी है जिसका उपयोग वह जैसे चाहे कर सकती है" स्त्री का सुख सहानुभूति दया में नहीं उसी के चुनाव में छिपा है। इसलिए देह के प्रश्न को वह हमेशा और पहले स्पष्ट करती है , देह को लेकर अपराध बोध यहाँ नहीं है। तुम्हारे सुख में राजशेखर देह के विमर्श को वैचारिक धरातल देते है। मालविका की यह सोच स्त्री देह के प्रति चली आती मर्दों की शुचितावादी दृष्टी को अंत ध्वंस कर देता है। सुधीर पचौरी तुम्हारा सुख में स्त्री देह के सम्बन्ध में जिन निष्कर्षो तक पहुँचे है उनके अनुसार, मालविका अपने देह में स्थित, देह की स्वामिनी, देह के चुनाव में सक्षम एवं देह के प्रति अपराध बोध से मुक्त, शुचितावादी पुरुष दृष्टि को ध्वस्त करनेवाली चरित्र है।

मृदुला गर्ग द्वारा रचित उपन्यास कठगुलाब पुरुष प्रधान समाज में नारी के दोहन-शोषण और मुक्तिसंघर्ष की अद्वितीय रचना है। यह उपन्यास पाँच ऐसी स्त्रियों की कहानी पर टिका है जो घरेलू हिंसा का शिकार होती है और बाद में एकजुट होकर उन पुरुषो का जो 'नरसूअर' अर्थात सवेंदनशील है का विरोध करती है।

उपन्यास में स्मिता,मरियान,नम्रदा,असीमा ऐसी स्त्रियाँ हैं जो स्त्री स्वातंत्र्य की हिमायती होने से अधिक अपने होने के अर्थ ,अपने अस्तित्व को बरक़रार रखने के प्रति प्रतिबद्ध है । ये पुरुष से सम्पूर्ण मुक्तिनहीं चाहती बल्कि उनसे प्रेम, सम्मान, सुरक्षा और संतान की आकांक्षी है क्योंकि कोई स्त्री बॉझ नहीं बनना चाहती। इसके लिए पुरुष की आवश्कता होती है। उपन्यास में आत्मकथा कहनेवाला एक पुरुष पात्र भी है विपिन। विपिन भी नारीवाद का हिमायती है वह मुक्त स्त्री साहचर्य चाहता है । इस प्रकार कठगुलाब और बच्चा पाँच खंडों में बँटे उपन्यास को एक सूत्र में रखने वाले दो भास्वर प्रतीक हैं।"[8]

ममता कालिया का उपन्यास एक पत्नी के नोट्स सत्तर पृष्ठों में सिमटा एक लघु उपन्यास है। दूसरें शब्दों में इसे लम्बी कहानी भी कही जा सकती है। उपन्यास में स्त्री विमर्श तो है परन्तु यह भारतीय परिप्रेक्ष्य में होने के कारण जटिल संरचना में जकड़ा हुआ है। उपन्यास की नायिका कविता नारीवादी चेतना से संपन्न होते हुए भी स्त्री मुक्तिके बैनर तले खड़ी नहीं होती।

व्यास सम्मान से पुरस्कृत बृहद आकार वाले उपन्यास आवां में स्त्री को एक नयी दृष्टी , एक नयी ज़मीन देने वाली लेखिका चित्रा मुदगल ने औरत के दुःख - दर्द और नारी मुक्ति के सवालों को उपन्यास की केंद्रीय विषय वस्तु बनाया है । "महानगरीय निम्न मध्यवर्गीय परिवार की युवती नमिता पिता के रोगग्रस्त होने पर आर्थिकता के लिए जब अस्तित्व संघर्ष करती है तो उसे बारम्बार यौन -उत्पीडन का शिकार होना पड़ता है। पुरुष दृष्टि उसकी देह पर ही होती है। उसे यह बोध कराया जाता है कि वह 'मादा' है । वह उपभोग्य है। एक युवती को एकांत में पाते ही पुरुष भेड़िये की शक्ल में हो जाता है इतना ही नहीं वह इतना मोहक जाल बिछाता है कि युवतियाँ स्वयं उसमें जाकर उलझ जाती है।"[9] पुरुषों के इस सामंती, पूंजीवादी दृष्टिकोण को लेखिका ने व्यापक कैनवास पर रेखांखित किया है।

उपर्युक्त सारे उपन्यासों में सभी स्त्रीयाँ पात्र स्वचेतना और संघर्ष की कहानी अभिव्यक्तकरती परिलक्षित होती हैं। अब रचना के केंद्र में वह है जो सिर्फ स्त्री के रूप में सामने आती है, और बैखोफ होकर कहती है "मै पत्नी नहीं, सहचरी बनना चाहती हूँ। पत्नी शब्द से मुझे दासत्व की बू आती है।"[10] अपने जीवन के निर्णय लेने के लिए स्त्री को किसी पुरुष की दरकार नहीं। गोपाल राय के शब्दों में कहें तो "सजग आत्मचेतना और आत्मनिर्णय से लैस होकर वे न केवल सामंती परिवेश और रूढ़ मर्यादाओं की गढ़ तोडती है बल्कि सकारात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्व की रचना करती नज़र आ रही है।"[11]

संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृष्ट -187
2. परवीन मालिक, प्रभा खेतान और उनका साहित्य, पृष्ठ -43
3. राजेंद्र यादव, हंस, सितम्बर , 1993 , पृष्ठ- 78
4. डॉ. अमर ज्योति, महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि, पृष्ठ 80
5. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृष्ठ -24
6. चित्रा मुदगल - एक जमीन अपनी पृष्ठ -52
7. राजेंद्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, पृष्ठ 170
8. सुधीश पचोरी, स्त्री देह के विमर्श में आलेख, निस्संग स्त्री की कथा, पृष्ठ 193
9. राजेंद्र यादव, हंस, अप्रैल 1997, पृष्ठ 75
10. अमरकांत, सुन्नर पांडे की पतोह, पृष्ठ -68
11. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहस, पृष्ठ -427

हिंदी विभाग, असिस्टेंट प्रोफेसर
मार थोमा कॉलेज तिरुवललला, केरल

निंबार्काचार्य और उनका द्वैताद्वैत दर्शन

प्रो (डॉ) षीबा शरत एस

भारतीय वैष्णव दर्शन की परंपरा में श्री.निंबार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद विशेष महत्व रखता है। यह चार वैष्णव संप्रदायों में से एक है। वे एक तेलुंगु ब्राह्मण योगी और दार्शनिक थे। इनका जन्म ग्यारहवीं शती में हुआ था। पिता का नाम अरुण मुनि और माता जयन्ती देवी थी। कहा जाता है कि नारदमुनि को चार वैष्णव संप्रदायों के मुख्य शिक्षक के रूप में माना जाता है। परंपरानुसार नारद मुनि ने निंबार्क को पवित्र अठारह अक्षरोंवाले श्री.गोपाल मंत्र में दीक्षा दिया और उन्हें युगल उपासना के दर्शन से परिचित कराया। जो दिव्य युगल श्रीराधाकृष्ण की भक्ति पूजा है। राधाकृष्ण की पूजा वृन्दावन की गोपियों के अलावा पृथ्वी पर किसी और ने एक साथ न की थी। साथ-साथ नारद मुनि ने उन्हें "श्रीनारद भक्तिसूत्र" का भक्ति सेवा सार भी सिखाया। निंबार्क पहले ही वेद, उपनिषद और अन्य शास्त्रों में पारंगत थे लेकिन श्री.नारद मुनि की शिक्षा में पूर्णता पाई गई। इनकी अलौकिक सिद्धि के संबन्ध में भी कई किंवन्तियाँ हैं। एक बार इन्होंने एक संन्यासी को अस्त होने के बाद सूरज के दर्शन कराए। इसी कारण इनका नाम निंबार्क पड़ा।

इनका दार्शनिक सिद्धान्त भेदाभेदभाव या द्वैताद्वैतवाद नाम से जाना जाता है। यह कुमार संप्रदाय, हंस संप्रदाय और सनकादि संप्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है। असल में यह कृष्णवाद का एक हिस्सा है। इनके मतानुसार भगवान ने हंस का स्प धारण करके इस संप्रदाय के सनकादि (ब्रह्मा के मानस पुत्रों) को उपदेश दिया था। वैष्णव मत में नारायण और लक्ष्मीदेवी को जो स्थान प्राप्त है वह इस मत में कृष्ण और राधा को प्राप्त है। इस दिशा में यह संप्रदाय रामानुजाचार्य के वैष्णव संप्रदाय से भिन्नता रखता है। रामानुज ने भक्ति और प्रपत्ति को अलग-अलग स्थान दिया और प्रपत्ति को मोक्षदायक, सार्वजनीन और सर्वोच्च माना है। लेकिन निंबार्क के मत में भक्ति और प्रपत्ति में कोई अंतर नहीं है। वैसे इन्होंने अद्धैत और अद्वैत दोनों को एक माना । निंबार्क संप्रदाय में राधा-कृष्ण परम आदरणीय है। राधा, कृष्ण की हृदयहारिणी शक्ति मान ली है, अर्थात् वे दोनों एक हैं। उनके मत में भक्ति को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। वास्तव में राधातत्व के प्रथम प्रतिष्ठापक निंबार्क है।

निंबार्क के मतानुसार द्वैत सत्य है और अद्वैत भी। तीन मौलिक तत्त्व चित, अचित् और ईश्वर। तीनों परस्पर भिन्न होने के कारण उन्हें द्वैती भी माना गया है। जीव और जगत दोनों पूर्ण स्प से परमात्मा के अधीन हैं। परम सत्य को निंबार्क वेदांत में ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। ब्रह्म निंबार्क के लिए पुरु षोत्तम अथवा भगवान है। वे इसे कृष्ण या हरि कहकर पुकारते हैं। मध्व के लिए ब्रह्म नारायण है जबकि इनके लिए राधासमेत श्रीकृष्ण। उनका मत यह है कि मुमुक्षु लोगों के एकमात्र आराध्य देव गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हैं और उसका स्थान वैकुंठ है, वह ज्ञानस्वरूप

है, समस्त दोष रहित उन्हें हम कृष्ण कहते हैं। ब्रह्म सगुण है सर्वव्यापी और अनंत गुणों से युक्त हैं। उनके मतानुसार एक ओर ब्रह्म और दूसरी ओर आत्मा तथा ब्रह्मांड के बीच का संबन्ध स्वाभाविक भेद -अभेद का संबन्ध है। वे भेद और अभेद दोनों पर समान रूप से बल देते हैं। संसार ब्रह्म का वास्तविक परिणाम है जो सजीव और निर्जीव संसार के कारण स्पष्ट करता है। मनुष्य, भगवान या सर्वोच्च प्राणी से भिन्न और अभिन्न दोनों है। भगवान और जीव के बीच एक विशेष संबन्ध है जिसमें दोनों एक दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। भगवान जीव का निर्माण और पालन करता है, अतः जीव भगवान की कृपा से ही अस्तित्व में रहता है। जीव ज्ञानस्वरूप और असंख्य है। वे हरि के अधीन रहते हैं। निंबार्क के लिए ज्ञान शंकर द्वारा परिकल्पित ज्ञान से भिन्न है। जीव इन्द्रियों की सहायता से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जीव ज्ञाता है। ज्ञाता और ज्ञान एक साथ विद्यमान रहना है। ज्ञान और कर्म के लिए जीव परमात्मा का आश्रय पाता है। जीव सभी अवस्थाओं में भोक्ता भी रहता है।

उनकी "दशश्लोकी" या कामधेनु रचना में ब्रह्म, चित्त तथा अचित् का उल्लेख है। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं - वेदान्त पारिजात सौरभ (ब्रह्मसूत्र पर भाष्य), सदाचार प्रकाश (कर्मकांड़ पर ग्रन्थ), भगवदगीता पर भाष्य, रहस्य षोड़सी (श्री.गोपाल मंत्र की व्याख्या), प्रपत्र कल्पवल्ली (श्री.मुकुन्द मंत्र की व्याख्या), प्रपत्ति चिंतामणी (सर्वोच्य समर्पण पर), प्रातः स्मरण स्तोत्रम, सविषेश निर्विषेश, श्रीकृष्ण स्तवम, सिद्धान्त रत्न, वेदान्त कौस्तुभ, पाँचजन्य, तत्व प्रकाशिका, सकलाचार्य मतसंग्रह आदि।

उनके दर्शनशास्त्र में भगवान और जीव का द्वैत (अलगाव), भगवान और जीव का अद्वैत (एकता), भगवान की कृपा और जीव की निर्भरता, भगवान की शक्ति और ज्ञान की महानता विद्यमान हैं। निंबार्क ने प्रकृति के तीन भेद माने हैं - अप्राकृत, प्राकृत और काल। जो जड़ वस्तु से उत्पन्न नहीं होते, उन पदार्थ को अप्राकृत कहते हैं। प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ को प्राकृत कहते हैं। इनमें सत्व, रज, तम तीनों गुण विद्यमान हैं। काल का मतलब समय ही है। वे जगत को माया नहीं मानते। जगत तो सूक्ष्म रूप में ईश्वर में ही वर्तमान है। सूक्ष्म तत्त्व परिणमित होकर जगत बनता है। जीव, ईश्वर तथा जगत के बीच का संबन्ध पूर्ण अभेदत्व का नहीं है। उनके अनुसार भेद और अभेद दोनों सही है। वे मानते हैं कि सभी आत्माएँ अपने सार, अस्तित्व और संचालन के लिए ईश्वर पर निर्भर है। उन्होंने ईश्वर को संसार का रचयिता बताया है। उनके लिए पूजा की सर्वोच्च वस्तु राधा और कृष्ण ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय दर्शन - राधाकृष्णन
2. कृष्ण भक्ति काव्य में सखीभाव-डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी
3. दर्शन दिग्दर्शन - राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी विभाग, यूनिवेर्सिटि कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम, केरल।

जैन धर्म और महावीर स्वामी

अरविंद कुमार यादव

शोध सार- जैन धर्म के पुनरुद्धारक भगवान महावीर स्वामी ने अपनी मौलिक उद्भावनाएँ समाज के समक्ष प्रस्तुत कीं। उनके द्वारा दिए गए उपदेशों का प्रचार-प्रसार उनके शिष्यों ने देश के विभिन्न भागों में किया। इन उपदेशों का व्यापक प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ा जिसके परिणामस्वरूप एक बड़ा जनसमुदाय जैन धर्म का अनुयायी बना। महावीर स्वामी के अनुसार ईश्वर सृष्टि का नियामक न होकर चित्त और आनंद का स्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कर्मरूपी साधना एवं पौरुष से परमात्मा का रूप धारण कर कैवल्य को प्राप्त कर सकता है। यही जैन धर्म का सार है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से जैन धर्म का विश्लेषण करते हुए महावीर स्वामी के विचारों को व्यक्त कर उनके द्वारा दिये गए उपदेशों को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करना ही इस शोध पत्र का ध्येय है।

बीज शब्द- जैन धर्म, जनमानस, अहिंसा, विचारधारा, विश्लेषण, सिद्धान्त, तपश्चर्या, निर्वाण, जीवात्मा, परमात्मा, ईश्वर, जिन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख आदि।

प्रस्तावना- जैन धर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। पुरातन काल से वर्तमान तक यह भारत के विभिन्न हिस्सों में अन्य धर्मों के साथ सामंजस्य स्थापित करता आ रहा है। जैन धर्म दो शब्दों के संयोजन से बना है- 'जैन' तथा 'धर्म' जिसका वास्तविक अर्थ है 'जिन' के द्वारा जिस धर्म का उपदेश दिया गया, वह है जैन धर्म। 'वैष्णव धर्म' तथा शैव धर्म के उपासक विष्णु तथा शिव को देवता स्वरूप मानते हैं लेकिन 'जिन्' ईश्वर स्वरूप नहीं हैं। जिसका तात्विक विश्लेषण इस प्रकार किया गया- "प्रत्येक जीवात्मा और परमात्मा में इतना अन्तर है कि जीवात्मा अशुद्ध होता है, काम, क्रोधादि विकारों से और उनके कारण कर्मों से घिरा होता है जिनकी वजह से उसके स्वाभाविक गुण- अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य प्रकट नहीं हो पाते जब वह उन कर्मों का नाश कर देता है तो वही परमात्मा बन जाता है, वही जिन कहलाता है।"[1]

जैन धर्म ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता। वह मानव द्वारा मानव को दिए गए हितोपदेशों पर आधारित है। मानव जो स्वयं अल्पज्ञ है तथा अपने पौरुष से प्रयत्न करके अपनी अल्पज्ञता को समाप्त कर संसार चक्र के बंधन व मोहमाया से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। मानव की यही युक्तिउसे अन्य जीवों से अलग कर भिन्न एवं महान सिद्ध करती है।

जैन धर्म में दो महत्वपूर्ण बातों पर जोर दिया गया है- अहिंसा और तप। वैदिक धर्म में हिंसापूर्ण यज्ञ प्रबल रूप से होते थे। पुरोहित वर्ग यज्ञों को धर्म का कृत्य समझकर पशुओं की बलि के समर्थक थे। भारतीय चिन्तन परम्परा में सर्वप्रथम अहिंसा का उद्घोष भगवान ऋषभदेव द्वारा किया गया। जैन तीर्थंकरों ने उसका समर्थन कर उस विचारधारा को और अधिक विकसित किया। वे अहिंसा को अपना परम धर्म मानते हैं- "श्रीकृष्ण के समय से आगे बढ़ें तब भी बुद्धदेव से कोई सौ वर्ष पूर्व हम जैन तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ को अहिंसा विमल सन्देश सुनाते पाते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पार्श्वनाथ से पूर्व अहिंसा केवल तपस्वियों के आचरण में सम्मिलित थी, किन्तु पार्श्व मुनि ने उसे सत्य, असत्य और अपरिग्रह के साथ बाँधकर सर्वसाधारण की व्यवहार कोटि में डाल दिया।"[2]

इससे सिद्ध होता है कि वेदों के गृहस्थ्य प्रधान युग में जैन धर्म के तीर्थंकरों ने वैराग्य, अहिंसा तथा तपस्यश्चर्या के सिद्धान्त को अपनाया साथ ही अन्य लोगों को भी इस पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हुये उनके मार्गदर्शन किए। उन्होंने लोगों को ना सिर्फ प्रेरित किया अपितु इस धर्म के सिद्धांतों का सरलीकरण कर सर्वसाधारण के ग्राह्य हेतु भी बनाया। इसी आधार पर आचार्यों ने जैन धर्म एवं जैन संस्कृति की अवधारणाओं को स्पष्ट किया है।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर एवं इसके संस्थापक ऋषभदेव हैं, यह सर्वविदित है। यजुर्वेद में भी ऋषभदेव, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि आदि तीर्थंकरो का वर्णन मिलता

है। भारतीय इतिहास में जैन परम्परा का आरम्भ भोगभूमि से होता है। समयानुसार इसमें परिवर्तन हुआ अतएव उसे कर्मभूमि कहा गया। इस युग को लाने का श्रेय 14 कुलकरों को दिया गया। प्रत्येक कुलकर ने कुछ न कुछ सुधार किए लेकिन उसी अनुपात में समस्याएँ भी आती रहीं। अन्तिम कुलकर नाभि थे जिनके पुत्र ऋषभदेव थे। "ऋषभदेव ने राजा का कर्तव्य निभाते हुए आवास समस्या के समाधान हेतु नगर-ग्राम बसाये। सर्वप्रथम अयोध्या का निर्माण हुआ। मन्त्रीमण्डल का निर्माण किया गया। आरक्षक वर्ग की स्थापना हुई। राज्यशक्ति की सुरक्षा के लिए सेना और सेनापति रखे गये। और इस तरह मानव सभ्यता के आदि युग का प्रारम्भ हुआ।"[3]

ऋषभदेव के पश्चात् जैन धर्म के 23 तीर्थंकर और हुए जिनमें अन्तिम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर थे। जैन आगम के अनुसार भगवान महावीर स्वामी का जन्म लगभग 600 ई. पू. बिहार प्रान्त में चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को हुआ था। उनके पिता कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ थे तथा माता त्रिशला वैशाली नरेश राजा चेटक की पुत्री थीं। महावीर स्वामी जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। इनकी चित्तवृत्ति प्रारम्भ से ही वैराग्य की ओर विशेष रूप से रही। सबसे पहले भगवान महावीर ने मुनि एवं श्रावक धर्म सिद्धान्तों की व्याख्या अलग तरह से की तथा धर्म सम्बन्धी उपदेश दिए। इन्हें महाव्रत या अनुव्रत की संज्ञा दी गई। ऋषभदेव के समय में लोग सरल स्वभाव एवं सादा जीवन व्यतीत करने में आस्था रखते थे परन्तु महावीर स्वामी के काल तक आते-आते वे सभ्यता के विकास के साथ-साथ पहले से अधिक ज्ञानी एवं तर्कशील हो गए। "यद्यपि महावीर द्वारा विवेचित धर्म में ऋषभदेव की अकिंचन मुनिवृत्ति, नेमिनाथ की अनासक्ति, नेमिनाथ की अरुग्णा और पार्श्वनाथ की अहिंसामय साधना सम्मिलित थी फिर भी बहुत कुछ नया था- व्यक्तिगत रूप से अनुभूत, तत्वज्ञान का प्रस्तुतीकरण एवं संघ व्यवस्था आदि।"[4]

महावीर स्वामी ने पार्श्वनाथ के चातुर्यामिक उपदेश में संशोधन किया तथा उसे परिवर्धित कर पंचायामी बनाया। जैन धर्म का मूलाधार अहिंसा को स्वीकार कर अमृषा, अहिंसा,अचौर्य, अमैथुन एवं अपरिग्रह इन पाँच तत्त्वों को सभी आचार्यों एवं मुनियों के लिए अपरिहार्य माना गया। इस धर्म के अनुसार विशालकाय हाथी से लेकर चींटी तक को मारना हिंसा माना गया है। महावीर स्वामी ने लगभग 42 वर्ष की अवस्था तक देश के कोने-कोने में भ्रमण किया तथा तत्कालीन अर्द्धमागधी लोकभाषा में अपना उपदेश दिया। अर्द्धमागधी में उपदेश देने का औचित्य यह भी था कि इसका विस्तार पूर्वोत्तर भारत के बहुत बड़े भूभाग में था। भारतीय जनमानस में प्रचलित भगवान महावीर स्वामी के इन उपदेशों का संकलन द्वादशांग आगम नाम से उनके शिष्यों ने किया जिसमें बारह अंग एवं चौदह पूर्व हैं। इन पूर्वों में महावीर स्वामी एवं उनके पूर्व की विचारधाराओं का वर्णन मिलता है। साथ ही इसमें नैतिक एवं दार्शनिक विचारों के साथ-साथ ज्योतिष, आयुर्वेद, विज्ञान, शकुनशास्त्र, मन्त्रतन्त्र आदि का भी समावेश किया गया था।

वर्तमान में इस आगम ग्रंथ का उल्लेख मात्र मिलता है; मूल रूप में अनुपलब्ध है। भगवान महावीर के चिन्तन एवं उपदेशों ने भारतीय जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया। विभिन्न भाषाओं प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में उनके चिन्तन का विस्तार मिलता है; विशेषकर कथानकों, दृष्टान्तों आदि में जोकि अन्य परवर्ती जैनाचार्यों द्वारा किया गया। महावीर के जीवन दर्शन का प्रभाव सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, आर्थिक के साथ-साथ शिल्प तथा साहित्यिक क्षेत्रों में भी व्याप्त है। महावीर स्वामी ने भगवान पार्श्वनाथ के चिन्तन को नई दिशा, दशा एवं स्वर प्रदान किया। अपनी मौलिक स्थापनाओं के माध्यम से समाज को एक अलग आचार विचार से परिचित करवाया। उन्होंने पुरुषार्थ को प्राथमिकता देकर समाज में जनमानस के भीतर अहिंसा, शान्तिप्रियता, सौहार्द और समन्वय को अपनाने पर जोर दिया। उनका कहना था कि- "समाहिकारएणं तमेव समाहिं पडिलब्भइ अर्थात दूसरों को समाधि और शान्ति पहुँचाने वाला स्वयं भी समाधि और शान्ति का भागी होगा।"[5]

महावीर स्वामी ने तत्त्वज्ञान सम्बन्धी, अपने उपदेश में व्यक्त किया है कि जीव और अजीव विश्व के दो मूल तत्त्व हैं तथा परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। जीव-अजीव का विवेचन करते हुए वे कहते हैं कि "जीव में चैतन्य के साथ अचेतन अंश है, वही कर्मों को खींचता है। अतः

हमेशा पूर्ण सजग, सचेतन रहो तथा मूर्छा और अचेतनता को तोड़ो।"[6] इस प्रकार चेतन का जड़ से पूर्ण रूप से मुक्त होकर अपने अनंतज्ञान की प्राप्ति करना ही जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। फलतः मानव इस जीवन-मरण के बंधन चक्र से मुक्तहोकर मोक्ष या निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

साधक को संसार के समस्त जीवों के प्रति मैत्रीभाव एवं समभाव रखना चाहिए। इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी का यह सिद्धान्त सहयोगपरक मान्यता पर आधारित है उनके अनुसार "तुम इस संसार में सिर्फ अपने लिए ही नहीं जीते हो, किंतु दूसरों के लिए भी जीते हो, आत्म-सापेक्ष नहीं; किन्तु पर-सापेक्ष बनकर जीना ही मानव जीवन है।"[7]

वर्तमान काल में मनुष्य केवल अपने कर्म, इच्छा एवं भविष्य के लिए स्वार्थ सिद्धि को तत्पर है। वह दूसरों के जीवन में उलझना नहीं चाहता लेकिन मानवीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने के लिए प्रतिबद्धता आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब वह एक दूसरे के प्रति भाईचारा एवं सहयोग की भावना रखे। मनुष्य में इस भावना का उदय बड़े ही सहजता से हो सकता है क्योंकि वह एक संवेदनशील प्राणी है।

महावीर स्वामी ऐसे पहले विचारक थे जिन्होंने केवल अपने वक्तव्य की चिन्ता नहीं की अपितु श्रोता उस सन्देश को अपने हृदय में उसी स्तर तक समाविष्ट कर पा रहा है या नहीं इस बात को उन्होंने गहराई से समझा। भगवान महावीर स्वामी ने स्याद्वाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। दर्शन एवं चिन्तन के क्षेत्र में स्याद्वाद का सिद्धान्त नितान्त आवश्यक है। परन्तु उससे भी अधिक जरूरी है व्यावहारिक जीवन में इसका अनुपालन करना। स्याद्वाद का सिद्धान्त इस विचारधारा पर आधारित है कि हम स्वयं को इस अनुरूप तैयार करें कि हम दूसरों की बात को भलीभाँति सुनें, समझें और उसका पालन करें। बोलने से ज्यादा सुनने की क्षमता विकसित करना चाहिए क्योंकि इससे व्यक्तिके ज्ञानचक्षु खुलते हैं। वह संसार के उन अंशों को भी बेहतर तरह से समझ पाता है जिस पर कभी उसकी दृष्टि नहीं गई थी। इसलिए एक साधक को अच्छा वक्ता होने के साथ-साथ अच्छा श्रोता भी होना चाहिए।

भारतीय संस्कृति के वैदिक काल में यज्ञों का प्राबल्य था। उन यज्ञों के अनुष्ठान में पशु बलि भी दी जाती थी। धर्म के नाम पर पशुओं की हत्या का कृत्य बहुतायत होता था जिसे वैदिक हिंसा-हिंसा न भवंति की संज्ञा देकर धर्म का आचरण स्वीकार कर लिया जाता था। महावीर स्वामी से पहले भी अहिंसा का उपदेश भारतीय मनीषियों द्वारा दिया गया किन्तु महावीर स्वामी ने अहिंसा का एक अलग उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने प्राणियों में समस्त जीवों के प्रति करुणा एवं वात्सल्य का भाव जगाया। "प्राणीमात्र पर अपना अधिकार रखना, उसे शासित करना, उत्तेजित कर देना तथा उसकी भावना को ठेस पहुंचाना आदि क्रियाएँ महावीर की दृष्टि से हिंसा थीं अतः उन्होंने इन सब वृत्तियों के त्याग को ही अहिंसा कहा है।"[8]

केवल शारीरिक तौर पर किसी को प्रताड़ित करना ही हिंसा नहीं है अपितु मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक रूप से भी किसी को कष्ट पहुँचाना हिंसा की श्रेणी में आता है। अतः मनुष्य को इन दुष्कर्मों को त्याज्य कर हिंसक वृत्ति से बचते हुये अहिंसात्मकता को आत्मसात करना चाहिए, क्योंकि अहिंसा को सभी धर्मों में सर्वोपरि माना गया है। जैन धर्म में इसको विशेष रूप से महत्व दिया जाता है।

धर्म के क्षेत्र में महावीर स्वामी का दृष्टिकोण क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। उनके अनुसार मनुष्य जो आचरण करता है वही धर्म से सम्बद्ध है। आँख बंद करके किसी धर्म का अनुसरण नहीं करना चाहिए। प्रथमतः उसके दूरगामी परिणाम पर विचार कर लेना चाहिए। धर्म रूढ़िवादिता की शिक्षा नहीं देता। धर्म प्रदर्शन या दिखावा नहीं है अपितु धर्म एक ऐसा पवित्र अनुष्ठान है जिसमें व्यक्तिकी आत्मा का शुद्धिकरण होता है। धर्म मनुष्य के भीतर उसकी अंतरात्मा से जुड़ा होता है। महावीर स्वामी ने सभी के लिए धर्माचरण का सिद्धान्त स्थापित किया। उन्होंने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों के लिए भी धर्म आवश्यक माना। महावीर स्वामी के दर्शन से प्रभावित होकर अनेक श्राविकाओं ने जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

जैन धर्म के प्रत्येक सिद्धान्त में समता का प्राबल्य

है। समस्त प्राणियों में समता का विस्तार क्रोध, हिंसा, लोभ, असत्य व ईर्ष्या के त्याग से ही संभव है। इन समस्त विषमताओं के विनाश के लिए ऊँच-नीच की भावना का त्याग, स्त्री-पुरुष समानता, अहिंसा एवं सत्य का पालन आदि सद्‌गुण आवश्यक हैं। महावीर स्वामी ने सभी सम्प्रदायों एवं जाति के लोगों को अपनाया तथा उन्हें धर्म दर्शन आदि की शिक्षा भी दी। वह जाति-वर्ग आधारित भेदभाव के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में सभी समान थे। जन्म के मानदंड पर मनुष्य की उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है। वे व्यक्ति के कर्म, गुण एवं विचार के आधार पर उसका मूल्यांकन करने के पक्षधर रहे। समन्वय की भावना ने तत्कालीन युग में लोकतंत्र की स्थापना की।

व्यक्ति अपने संस्कारों का निर्माता स्वयं ही होता है। उसके संस्कारों की झलक उसके व्यक्तित्व में स्वतः परिलक्षित होती है। वह समाज में अपने सत्कर्मों से ही पहचाना जाता है। भगवान महावीर स्वामी का यह विशेष प्रयास रहा है कि व्यक्ति में मानवता दृढ़ हो, अर्थात मनुष्य में मनुष्य के प्रति समानत्व संवेदना विकसित हो। महावीर स्वामी सम्पूर्ण विश्व को समभाव से देखने वाले साधक थे। उनके अनुसार यदि समाज में परिवर्तन लाना है तो व्यक्ति को बदलना होगा। उसे ऊँच-नीच के दायरे से बाहर निकलना होगा। महावीर स्वामी ने इस सन्दर्भ में कहा है कि- "उच्च कुल में उत्पन्न होने मात्र से व्यक्ति को ऊँचा नहीं कहा जा सकता। वह ऊँचा तभी हो सकता है जबकि उसका चरित्र या कर्तव्य ऊँचा हो, विशुद्ध हो।"[9]

जैन आगम के अनुसार महावीर स्वामी का निर्वाण विक्रम काल से 470 वर्ष पूर्व लगभग है। महावीर स्वामी की निर्वाण भूमि पावानगरी में प्रत्येक वर्ष दीपमालिका उत्सव मनाने की प्रथा है। जैन धर्म के अनुयायी दीपमालिका निर्वाणोत्सव में भगवान महावीर की विशेष पूजा का आयोजन करते हैं। महावीर स्वामी के दर्शन एवं सिद्धान्तों को उनके अनुयायियों ने उनके निर्वाण पश्चात् भी जीवंत बनाए रखा है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जैन धर्म के उपदेशों का अनुसरण करने में देश के सर्वांगीण विकास की संभावना निहित है। जैन धर्म के आचार्यों एवं मुनियों ने जिस प्रकार अपने विचारों को उदात्त बनाए रखा एवं सृजनोन्मुख जीवनशैली को अपनाने का सन्देश दिया वह वैश्विक स्तर पर सभी धर्मों के लिए अनुकरणीय है। जैन धर्म किसी भी धर्म की आलोचना या बुराई नहीं करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जैन धर्म का उपदेश एकांगी एवं एकदेशीय न होकर सर्वांगीण एवं सार्वदेशिक है।

सन्दर्भ :

1. जैन धर्म, श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री, चौरासी मथुरा, पृ.सं.-62
2. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.-136
3. जैन धर्म और मानवमूल्य, डॉ. प्रेमसुमन जैन, संघी प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं.-3
4. वही, पृ. सं.-19
5. जैन धर्म का जीवन सन्देश, उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृ. सं.-9
6. जैन धर्म और मानवमूल्य, डॉ. प्रेमसुमन जैन, संघी प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं.-20
7. जैन धर्म का जीवन सन्देश, उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृ. सं.-6
8. जैन धर्म और मानव मूल्य, डॉ. प्रेमसुमन जैन, संघी प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं.-21
9. वही, पृ. सं.-24

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
लखनउ

मृदुला गर्ग की 'मेरा' कहानी में चित्रित आधुनिकता बोध

डॉ प्रिन्सी पी ए & डॉ एल तिल्लै सेल्वी

प्रस्तावना : मृदुला गर्ग आज की हिन्दी कहानी को लेकर कहती है "मुझे लगता है कि हिन्दी कहानी में सबसे ज्यादा वैविध्य मेरी पीढ़ी के साथ आया। प्रयोग केवल शिल्प में नहीं। कथ्य में भी हुए। साथ ही पिछली पीठी की शब्द बहुलता में भी कभी आई। मुझसे अगली पीढी, भाषा और शिल्प के साथ ज्यादा प्रयोग कर रही है। पर विचार धारा से विद्रोह और नई मूल्य दृष्टि या जीवन दर्शन से उत्प्रेरित, कथ्य में प्रयोग कम दिखाई देते हैं। इसलिए, विषय वैविध्य भी कम हुए हैं। पर उसके साथ यह भी उतना ही सच है कि, इस नई पीढ़ी ने दलित आख्यान के रूप में एकदम भिन्न यथार्थ प्रस्तुत किया है।"[1] कहानी, रचना-प्रक्रिया रचनाकार की संवेदना आदि पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करने के साथ ही साहित्यकार के रूप में स्वयं तथा कला के प्रयोजन को भी उन्होंने सुस्पष्ट किया है। मृदुला गर्ग बंगला में रहने पर भी हिन्दी साहित्य को पढ़ने और लिखने का प्रयास किया है। जब कहानियाँ लिखने लगीं तो सबसे पहले अपने पिताजी को ही दिखाती थीं। इसलिये लेखिका अपने पिता को एक अच्छे मित्र के समान मानती थी। प्रेमचन्द, टॉलस्टॉय आदि साहित्यकारों से प्रभावित होकर स्वयं जब कहानियाँ रचने लगीं तो उनके विचारों में कुछ बदलाव आने लगा था। तब से लेखिका ने कलम उठाकर शोषित, पीड़ित, सेक्स के ज्वाला से जलती नारी को लेकर चित्रित करने लगी। मृदुला गर्ग की सभी कहानियों को स्त्री के विविध रूपों का साक्षात्कार कराती हुई उसकी अस्मिता और संघर्ष के प्रश्नों को संवेदना के घरातल पर उद्घाटित करती है। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानियों में अनेक वर्ण्य विषयों को आधार लिया है। 'मेरा' इस प्रकार का एक कहानी है।

'मेरा' कहानी का सार : मृदुला गर्ग की मेरा कहानी का केंद्र पात्र मीता और उनके पति महेंद्र अग्रवाल है। दोनों का प्रेम विवाह है। महेंद्र सरवरिया एंड को. में असिस्टेंट इंजीनियर है। उनका वेतन छह सौ रुपया है। दो साल से वह काम करते हैं। मीता सेतु कंपनी में टाइपिस्ट है तीन सौ रुपया महीने में वेतन मिलते हैं। वह ढाई साल से काम करती हैं। महेंद्र को अपनी जिंदगी के बारे में खूब सपने हैं।

महेन्द्र हमेशा योजनाबद्ध तरीके से जीना चाहता है। उसके सभी काम योजना के अनुसार ही होने चाहिए। उसकी बनाई योजनाओं में एक योजना यह भी थी कि पहले वह और मीता अमेरिका जायेंगे जहाँ वह स्वयं पढ़ाई करेगा और मीता नौकरी करेगी। जब महेन्द्र की पढ़ाई पूरी हो जायेगी तब वे बच्चा पैदा करेंगे। वह पहले ही बच्चा लाकर बच्चे की जिन्दगी चौपट नहीं बनाना चाहता। महेन्द्र का पालन-पोषण बड़े ही अभाव में हुआ था अतः यह नहीं चाहता था कि उसकी बीवी तथा बच्चे अभावों के उसी दौर से गुजरें।

महेन्द्र चाहता है कि जब वह स्वयं कमाने लगे और घर में सारी सुविधाएँ जैसे बड़ा घर, गाडी नौकर चाकर आदि होने के बाद ही उसका बच्चा पैदा हो। मीता के गर्भवती होने की बात सुन एबोर्सन कराने के लिए मनाता है। किन्तु मीता इन्कार कर देती है। वह अपने गर्भ-शिशु को जन्म दे पालना चाहती है। इसके लिए वह तमाम कठिनाईयाँ भी उठाने के लिए तैयार हो जाती है। महेन्द्र मीता से गर्भपात के विषय में उसकी माँ से बात करने की सलाह देता है। मीता माँ से सहारा पाने की आशा में अपनी माँ के घर जाती है किन्तु वहाँ उसे पता चलता है कि माँ खुद दो बार इस प्रक्रिया से गुजर चुकी हैं। मीता यह जान भय और आतंक से काँप उठती है। उसकी माँ भी कहती है महेन्द जो चाहे वह करो । अन्ततः महेन्द्र उसे डॉक्टर के पास ले ही जाता है जहाँ डॉक्टर से उसे पता चलता है कि गर्भपात सिर्फ स्त्री की इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सुन मीता गर्भपात के फार्म पर बिना हस्ताक्षर किए फाड़ देती है और गर्भपात न कराने का निर्णय लेती है। महेन्द्र उसके निर्णय से आश्चर्यचकित होता है। मीता की चेहरा बिलकुल शांत है जैसे तुष्टि का ऐसा भाव है जो पर्वतारोही के मुख पर दुर्गम चोटी पर पहुंच जाने पर खिल आता होगा।

मेरा कहानी में आधुनिकता बोधः युग की समकालीन समस्याओं का निरूपण समसामयिकता है एवं स्थापित मूल्यों का नवीनीकरण आधुनिकता है। आधुनिकता, युग विशेष का वह भाव है, जिसमें युग की समस्याएँ और समाधानों का चक्र घूमता रहता है एवं नये रास्तों का अन्वेषण होता रहता है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार "आधुनिकता मध्य युगीन जीवन-दर्शन से भिन्न एक नया जीवन दर्शन और दृष्टिकोण है।"[2] श्रीपतराय के शब्दों में "आधुनिकता को एक अन्तदृष्टि मानते हैं।"[3]

आधुनिकता केवल बाह्य वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन अथवा सभ्यता के स्थूल रूपों की ही विशेषता नहीं उसकी जड़ें व्यक्ति के अन्तस्तल में रहती हैं। आधुनिक व्यक्तिकी विचारधारा तार्किकता, दृष्टिकोण की वैज्ञानिकता, साहित्यिक एवं सामाजिक धारणाएँ सभी युग जीवन के यथार्थ पर आधारित होती हैं। सामान्यतः देखा जाए तो आधुनिकता व्यक्तिकी मानसिकता को अपने परिवेश के अनुसार निरन्तर परिवर्तित करती हुई उन्मुक्तता की ओर अग्रसर होती है। आधुनिकता के कारण व्यक्तिकी सोच संकुचित नहीं रहती एवं विचारों, संकल्पनाओं में गतिशीलता व सक्रियता आती है जिसमें व्यक्ति संकल्पनाओं में गतिशीलता व सक्रियता आती है जिसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य या खुला दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है एवं बौद्धिकता के द्वारा वह विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहता है । डॉ कृष्णा अग्निहोत्री के अनुसार "आधुनिकता अपने समकालीन परिवेश के समानान्तर बोध की प्रक्रिया है जिसे जिज्ञासा निर्माण या बैद्धिक आलस्य में नहीं बांधा जा सकता है।"[4] इस प्रकार आधुनिकता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि मानव के प्रतिक्षण होने वाले परिवर्तन के प्रति आस्थावान रहकर ही जीवित रह सकती है ।

मृदुला गर्ग जी की मेरा कहानी में नायक महेंद्र आधुनिक चिंता वाला आदमी है उन्होंने अपना जिंदगी गरीबी में बिताना नहीं चाहता है। उसके अनुसार अमीरीका जाकर पढ़ना और वहाँ पर काम करना मात्र से जिंदगी बढ़िया जायेगी। भारत पर काम करते उनको कुछ भी न मिलेगा उनका जिंदगी गरीबी में पड़ जायेगा। उनका छोटा भाई सुरेन्द्र अमीरीका में हैं वहाँ पर परिवार के साथ जीता है। उस तरह वह भी अमीरीका में जीना चाहता है। इस कारण से महेन्द्र अमीरिका में एम एस करना चाहता है और उसके लिए एप्लीकेशन दे रखी है शिकागो यूनिवर्सिटी में स्कॉलरशिप के लिए भी आवेदन करता है । उनको अडमिशन भी मिला है तब मीता ने कहा है कि वह गर्भवती है यह सुनकर महेन्द्र चकित हो गया । दंपतियों का सपना है बच्चा होना लेकिन महेन्द्र ने इस गर्भ को गर्भपात करने के लिए मीता से कहा। मीता ने इसको स्वीकार नहीं किया इसके बारे में दोनों के बीच एक खूब झगड़ा भी हो गया है । महेन्द्र की नज़रो में कुसूर मीता का है। सिर्फ मीता का, उसकी नजरो में।"[5]

महेन्द्र को बच्चा पसंद है। लेकिन इस समय एक बच्चा हो तो उनके जीवन में एक बाधा है। क्योंकि उसका और मीता का स्टूडेंट विजा है बच्चों को साथ लेना संभव नहीं है। महेन्द्र और मीता का प्रेम विवाह है । शादी का निर्णय लेते समय महेन्द्र की माँ ने कितनी खूबसूरत लड़कियाँ दिखलाई पर महेन्द ने मना कर दिया । क्योंकि महेन्द्र सोचा था मीता पढ़ी लिखी होशियार नौकरीपेशा लड़की है, उसकी योजना में खुशी से हाथ बँटाएगी ।6 उनके राय में उन्होने अपने बच्चो को उसकी तरह गरीबी में जीना न चाहती है बच्चों को जो चाहे वह देने को वह इच्छा करती है । इस प्रकार महेन्द्र ने मीता को समझने का प्रयास करती है। महेंद्र ने मीता को समझना चाहता है और मीता से इसप्रकार कहता है कि "मीता मैं नहीं चाहता मेरा बेटा मेरी तरह गरीबी और अभाव में पले।"[7] इसलिए उनका अडिग विश्वास है कि अमीरीके जाने से हमारी जिंदगी सुरक्षित हो जायेगी। लेकिन मीता को अपने भावि के प्रति कोई शंका नहीं है।

मीता अपनी काम और जिंदगी से पूर्ण रूप से तृप्त है वह अपने बच्चे को स्वीकृत करना तैयार है क्योंकि वो नन्हे जीवन उनका और महेन्द्र का है। वह अपने जिंदगी में केवल खुशी चाहती है । विवाह के बाद मीता की सालगिरह में महेन्द्र ने चालीस रुपये की एक सूती साड़ी ले लिया मीता बहुत खुश हुआ उस समय महेन्द्र ने कहा है अगले वर्ष हम अमीरीका जायेंगे और मैं तुमको "मोतियों की माला शिफोन की साडी नाइलॉन की गुलाबी नाइटी पन्ने की अँगूठी ऊँची एड़ी के सैंडिल सीपियों का पर्स, तरह तरह के कॉस्मेटिक्स,

लिपिस्टिक, पाउडर कॉम्पैक्ट , फ्रेंच परफ्यूम आदि की उपहार दूँगी।"[8] मीता को अपने पेट में रहे नन्हे जीवन को हत्यार करने का मन नहीं है । इस कारण से मीता अपने पति को छोडकर, आनेवाली कठिनाइयों से जूझने के लिए तैयार होती है। अपने निर्णय को और सक्षमता देने के लिए वह माँ से साहस बटोरना चाहती है। लेकिन इस प्रक्रिया से माँ खुद दो बार गुजर चुकी है, यह सुनकर वह आतंकित हो जाती है। मीता की माँ मीता से इस प्रकार कहती है कि "सुना है, अब वह गैरकानूनी नहीं रहा। सरकारी अस्पतालों में मुफ्त हो जाता है?"[9] यह माँ से सुनकर वह थोडी देर के लिए भी माँ के साथ नहीं रहना चाहती। आखिर महेन्द्र उसे डॉक्टर के पास लेकर चला ही जाता है। लेकिन गर्भपात सिर्फ स्त्री की इच्छा और दायित्व पर निर्भर रहता है, यह जानकर मीता फॉर्म के टुकड़े कर देती है । मीता बिलकुल शांत होकर अपने निर्णय को व्यक्त कर देती है। मीता का खुद गर्भपात न करने के लिए निर्णय लेना, लेखिका इन शब्दोंमें व्यक्त करती है-"उसका चेहरा बिलकुल शान्त है, उसकी आवाज की तरह। पर उस शान्ति में निष्क्रियता नही निर्णय झलक रहा है। सृष्टि का ऐसा भाव है वहाँ जो पर्वतारोही के मुख पर दुर्गम चोटी पर पहुँच जाने पर विल आता होगा।"[9] इस कहानी में स्त्री का स्वतंत्र चिंतन भी देख सकता है। यहाँ नायिका मीता अपने पति के इच्छा के विरुद्ध अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध स्वयं निर्णय लेती है। वो निर्णय लेते समय उनका मन और चेहरा में शांत भाव है। अपनी इच्छा के अनुसार जीना चाहती एक स्वतंत्र नारी एव आधुनिक चिंतनवली नारी मीता को यहाँ हम देख सकते हैं।

अमीरीका जाना महेंद्र का सपना है। महेन्द्र अपनी पत्नी को बहुत अधिक प्यार करता है। लेकिन उनको अपने जीवन के प्रति बड़ा सपना है। आज की युवा पीढ़ी महेन्द्र की तरह भारत को छोड़कर विदेश जाना चाहते हैं। उनके विचार में विदेश में काम करने से ही उनका जीवन सुरक्षित हो जाये।

निष्कर्षः मृदुला गर्ग का रचना संसार सामाजिक ज्वलंत संदर्भों को स्वयं में समाहित करता है क्योंकि उन्होंने उस दौर में लेखन प्रारम्भ कि जिस समय व्यक्तिकी जीवनशैली में बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा था। प्राचीन जीवन शैली के बहुत से मानदण्ड टूट कर बिखर रहे थे, जो नया समाज तैयार कर रहा था, उस समाज में शिक्षा का प्रसार, आधुनिकीकरण एवं पाश्चात्य सभ्यता के स्त्री की अस्मिता एवं स्वतंत्रता की चितन दिखाई दे रहा था। मृदुला गर्ग के रचनाकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि उनकी साहित्य की नींव तैयार करती है। लेखिका का प्रयास यह रहा है कि मनुष्य अपने पतन की ओर जाते हुए स्थिति को पहचानकर उन्नति करके समाज का सशक्त नागरिक होने की शक्ति अर्जित कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 मृदुला गर्ग (25.10.2000) को दिल्ली स्थित निवास पर दिये वक्तव्य से - कुमारी राजु एस बागलकोट

2 डॉ नगेन्द्र , नयी समीक्षा नये संदर्भ पृ.61

3 डॉ. धनंजय(1970) समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि अभिव्यक्ति प्रकाशन नई दिल्ली पृ.99

4 कृष्ण अग्निहोत्री स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कहानी इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन नई दिल्ली पृ.132

5 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.175

6 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.178

7 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली पृ.181

8 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.187

9 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.194

10 मृदुला गर्ग, संपूर्ण कहानियाँ(मेरा), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.200

शोध निर्देशिका : **डॉ एल तिल्लै सेल्वी**
आचार्या, हिंदी विभाग, अण्णामलै विश्वविद्यालय
अण्णामलै नगर

शोधार्थी, हिंदी विभाग
अण्णामलै विश्वविद्यालय
अण्णामलै नगर

मुंशी प्रेमचंद कृत गबन का भाषा सौष्ठव

अच्युत शुक्ला

सार : गबन में मुंशी जी ने पारिवारिक जीवन के मनोविज्ञान को अपने कथानक की केन्द्रबिन्दु बनाया है। चूँकि वे उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र मानते थे, अतएव मानव जीवन की स्वाभाविक लालसाओं और उनको पूरा करने के लिए किए गए कार्यों को चित्रित करने में उनका कौशल अपनी सम्पूर्ण जिजीविषा के साथ जगमगा उठा है। अपनी सूक्तियों के लिए प्रेमचंद जी विश्ववंद्य और विश्व-विख्यात हैं। जब कभी वे सूत्र-शैली में अपनी बात रखते हैं तो मानो परिवेश, पात्र या घटना नहीं बल्कि स्वयं प्रेमचंद अपने अंतर्मन की बात को लेकर साक्षात प्रकट हो गये हों। जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंधों में सूत्र शैली से चमत्कार उत्पन्न करतें हैं वैसे ही प्रेमचंद अपनी किस्सागोई के बीच-बीच में कुछ सूत्र वाक्य रखकर। वे कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, नाटककार और अनुवादक के तौर पर हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं वे भाषा के साधक हैं, चित्रकार हैं, जादूगर हैं, शिल्पकार हैं।

मुंशी प्रेमचंद अपने पूर्ववर्ती लेखकों (भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग) से उपन्यास की परम्परा को लेकर भी अपनी भाषाई चमक, किस्सागोई की अनिर्वचनीय कला और शैलीगत वैविध्य के कारण स्पष्ट रूप से उनसे पृथक दिखाई देते हैं। वे कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, नाटककार और अनुवादक के तौर पर हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं पर उनकी कहानियों और उपन्यास का जितना प्रभाव भारतीय मानस पटल पर पड़ा उतना उनके अन्य रूपों का नहीं। इस प्रभाव, इस आकर्षण के पीछे उनके द्वारा बुने गए कथानक और विविध आयामों को छू लेने एवं मानव मन के हाव-भाव को जान लेने की अद्भुत क्षमता तो है ही; साथ ही एक अन्य वस्तु उनके कहने का तरीका भी है जो उनकी निखरी और सधी हुई भाषा के रूप में पाठकों को दिखलाई पड़ता है।

फिर चाहें वो विभिन्न आय वर्ग के पात्र हों, विभिन्न आयु वर्ग के पात्र हों या फिर विभिन्न जाति-धर्म के पात्र हों; सबकी भाषा उनके अनुरूप ही दिखाई देती है। ज्यों ही वातावरण और परिवेश में बदलाव होता है, प्रेमचंद जी की भाषा भी उनका अनुसरण करती है। भाषा उनके आगे निरू पाय प्रतीत होती है। उनकी भाषा में तद्भव, तत्सम, देशज, विदेशी शब्द तों मिलते ही हैं साथ ही साथ भाषा का खाँटीपन भी उनकी रचनाओं विशेषकर उपन्यास (विस्तृत फलक होने के नाते) में नजर आता है। उनकी भाषा पर मुग्ध होने के साथ-साथ हमको इस तथ्य को लेशमात्र भी नहीं भूलना चाहिए कि वे जिस समय लिख रहे थे उस समय अनेक प्रकार के भाषाई प्रतिबन्ध उनके सम्मुख उपस्थित थे। जितनी सहजता और निर्भीकता के साथ वर्तमान युग में लिखा जा सकता है (हालाँकि इसपर भी मतभेद हो सकते हैं), उतनी आजादी मुंशी जी के समय में सम्भव नहीं थी, फिर भी उन्होंने जो कहा है बेबाक कहा है, बगैर भाषाई उत्कृष्टता को खोए हुए।

अपने उपन्यासों में वे विभिन्न प्रकार के परिवेश, विभिन्न प्रकार की समस्याओं और विभिन्न प्रकार के विचारों/वादों को उठाते दिखाई देते हैं और एक सीमा तक सफल भी प्रतीत होते हैं। उनके उपन्यास उनकी विस्तृत सोच और नवोन्मेषिता के परिचायक हैं एवं भाषा उनके भावों की अनुगामिनी। डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने उनकी भाषा के संदर्भ में लिखा है कि- "प्रेमचंद जी की भाषा में उर्दू की रवानी, व्यावहारिक जीवन का प्रवाह, ग्राम्यजीवन की अभिव्जज्जना तथा स्वयं उनके व्यक्तित्व की सरलता के दर्शन एक साथ होते हैं। उनकी भाषा में हिन्दी की जातीय विशिष्टता देखी जा सकती है। उसमें वर्णन की अद्भुत क्षमता है। वह

दृश्यों को इतने सुन्दर ढंग से मूर्त कर देती है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु सौन्दर्य साकार हो उठता है।"[1]

गबन में मुंशी जी ने पारिवारिक जीवन के मनोविज्ञान को अपने कथानक की केन्द्रबिन्दु बनाया है। चूँकि वे उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र मानते थे, अतएव मानव जीवन की स्वाभाविक लालसाओं और उनको पूरा करने के लिए किए गए कार्यों को चित्रित करने में उनका कौशल उपनी सम्पूर्ण जिजीविषा के साथ जगमगा उठा है। नारी की आभूषणप्रियता, दिखावे और प्रदर्शन की प्रवृत्ति और असीमित स्पृहाएँ हीं इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है। सरसरी निगाह से देखने पर यह सामान्य बात प्रतीत होती है, पर अपनी भाषा के बूते पर मुंशी जी ने उपन्यास में पठनीयता, रोचकता, चास्ता और सौष्ठवता का समावेश कर दिया है।

उपन्यास में प्रेमचंदजी ने अरबी, फारसी, उर्दू के शब्दों का बेहचिक और बहुतायत में प्रयोग किया है। भाषा अधिकांश स्थलों पर पात्रानुकूल और परिवेशानुकूल है। जहाँ कहीं पर तात्समिक शब्दों की माँग उत्पन्न हुई है, मुंशीजी ने उसका प्रयोग भी निस्संकोच किया है। हालाँकि कहीं-कहीं पर उर्दू-अरबी-फारसी के शब्दों का अत्यधिक्य पाठक को अटपटा सा भी प्रतीत हो सका है। हिन्दी का वह पाठक जो उर्दू-अरबी-फारसी के रोजमर्रा के शब्दों से ताल्लुक नहीं रखता, उसके लिए यह किंचिंत अटपटा सा प्रतीत होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- "चाहते तो हजारों वसूल कर सकते थे, पर कभी एक पैसे के भी रवादार नहीं हुए थे। दीनदयाल के साथ ही उनका यह सलूक न था। यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊँचे आदर्श के आदमी हों, पर रिश्वत को हराम समझते थे।"[2]

यहाँ वसूल (अरबी), रवादार (फारसी), सलूक (अरबी), हराम (अरबी), रिश्वत (अरबी) हैं। या फिर-"... आप मुलाहिजे और मुरव्वत के सबब से कुछ न कह सकते हों, तो मुझे उसकी दुकान दिखा दीजिए।"[3]

स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार विदेशज शब्दों का प्रयोग बहुलांश में हुआ है यथा- आतिशबाजियाँ(फारसी), अव्वल(अरबी), जायदाद(फारसी), शेरदहाँ(फारसी), तकाजा(अरबी), मयस्सर (अरबी), फरेब(फारसी), नौबत(अरबी), आफत(अरबी), सब्र(अरबी), रुख(फारसी), अख्तियार, जब्त, तावान, बेवाक, मीजान(अरबी), शामत, बेगैरत, नालिश(फारसी), ताकीद इत्यादि।

साथ-साथ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी उपन्यास में आवश्यकतानुसार किया गया है, जहाँ रमानाथ चाल-चलन, पहनने-ओढ़ने के ढंग या वकील साहब के विचारों में अंग्रेजी शब्दों की प्रमुखता दिखाई पड़ती है जैसे- "किसी का चेस्टर माँग लिया।"[4] /"किसा का पंप शू पहन लिया।"[5] /"कभी बनारशी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में।"[6] /"दस सूट बदलने का उपाय हो गया।"[7] /"सहसा रमानाथ टेनिस-रैकेट लिये बाहर से आया।"[8] /"रमा ने दरवाजे पर जाकर देखा, तो उसके नाम एक पार्सल आया था।"[9] /"प्रयाग के सबसे अधिक छपने वाले दैनिक पत्र में एक नोटिस निकल रहा है।"[10] /"बेचारे जाड़ों-भर एमलशन और सनाटोजन और न जाने कौन-कौन से रस खाते रहते हैं।"[11]/"महाराज ने तुरंत अपना पुराना ओवरकोट पहना।"[12]/"... मुझे डिसमिस हो जाना मंजूर है, पर सर्टिफिकेट न दूंगा।"[13] आदि-आदि। इसी तरह क्लर्क, चार्ज, रिंग, केस, सिनेमा, फैशनेबुल, म्युनिसिपल, स्लीपर, सुपरिंटेंडेंट इत्यादि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी उपन्यास में जगह-जगह मिलता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा मुंशीजी भाषा और समाज पर अपनी व्यापक पकड़ का संदेश देते दिखलाई पड़ते हैं। मुहावरों के समुचित प्रयोग के कारण कथानक में शैथिल्यता बोध पनपने नहीं पाया है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ कहीं से भी थोपी हुई प्रतीत नहीं दीखती। बल्कि पात्रों और परिवेश का अभिन्न अंग लगती हैं- "जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है तभी तक यह कुलेलें हैं"[14] आदि।

शब्द युग्मों का उचित प्रयोग करके मुंशीजी ने अपने उपन्यास में भाषा के खाँटीपन को बनाए रखा है। जैसे सामान्य जनमानस बोलते समय प्रवाह में बोलता चला जाता है, वैसे ही प्रेमचंद के पात्र भाषागत प्रवाह में बहते चले जाते हैं। इससे भाषाई सहजता बढ़ी ही है कम नहीं हुई है यथा- "दयानाथ में लल्लो-चप्पो की आदत न थी।"[15]आदि। उपन्यास की भाषा में कहीं कहीं वाक्य में काव्यगत तुकबंदियाँ भी मिलती हैं- "जालपा की सिसकियाँ, पिता की झिड़कियाँ, पड़ोसियों की कनफुसकियाँ सुनने की अपेक्षा मर जाना कहीं आसान होगा। "[16]

अपनी सूक्तियों के लिए प्रेमचंद जी विश्ववंद्य और विश्व-विख्यात हैं। जब कभी वे सूत्र-शैली में अपनी बात रखते हैं तो मानों परिवेश, पात्र या घटना नहीं बल्कि स्वयं प्रेमचंद अपने अंतर्मन की बात को लेकर साक्षात प्रकट हो गये हों। जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंधों में सूत्र शैली से चमत्कार उत्पन्न करतें हैं वैसे ही प्रेमचंद अपनी किस्सागोई के बीच-बीच में कुछ सूत्र वाक्य रखकर। उपन्यास में उन्होने उर्दू-अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग तो किया ही है, साथ ही साथ देशज एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया है। जहाँ कहीं आवश्यकता तात्समिक खड़ी बोली की पड़ी है, उसका व्यवहार भी प्रेमचंद ने उसी के अनुरूप किया है। एतदर्थ कुछ सूक्ति वाक्य दृष्टव्य हैं- "प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार किसी भयंकर जन्तु की भाँति घूरता हुआ जान पड़ता था।"[17]/"जिससे हम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, उसी पर सबसे अधिक रोष भी करते हैं।"[18] आदि।

रिश्वत बुद्धि से, कौशल से, पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन या पाखंडियों का आधार है। प्रभाव एवं प्रवाह की दृष्टि से भाषा निर्मल सरिता की तरह सतत प्रवाहमान नजर आती है। जब और जहाँ कहीं मुंशीजी शुद्ध तात्समयिक खड़ी बोली में लिखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है हम प्रेमचंद को नहीं प्रसाद को पढ़ रहें हों, जैसे- "द्वादशी के चाँद ने अपना विश्व-दीपक बुझा दिया। प्रभात की शीतल-समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी।"[19]/ "वह कौन हृदयहीन व्याध है, जो चहकती हुई चिड़िया की गरदन पर छुरी चला देगा ? वह कौन अरसिक आदमी है, जो किसी प्रभात-कुसुम को तोड़कर पैरों से कुचल डालेगा?"[20]/ "आदि-आदि।

हालाँकि जहाँ कहीं देवीदीन अपने वक्तव्यों को कहते हैं वहाँ वाक्य अत्यधिक लंबे हो गए हैं और भाषा का प्रवाह टूटता नजर आता है, इन स्थानों पर ऐसा लगता है कि प्रेमचंद पर आदर्शवाद और गांधीवाद हावी हो उठा हो और उसके प्रवाह में उपन्यास का कथानक और भाषा दोनों ही शिथिल नजर आने लगते हैं।

उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का तो प्रयोग हुआ ही है, साथ ही साथ मुंशीजी पात्रों की मुखाकृतियाँ, उनके हाव-भाव को भी बड़ी बखूबी से उकेरते हुए चलते हैं। उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा नहीं लगता कि कोई मुद्रित वस्तु पढ़ रहें हो वरन ऐसा प्रतीत होता है कि सामने कोई सिनेमा चल रहा हो- "रमा ने उसे निकालकर देखा और हँसकर बोला -/जालपा ने कुंठित स्वर में कहा- .../रमा ने विस्मित होकर कहा- .../जालपा ने नाक सिकोड़कर कहा- ..."[21]

जब हमें किसी व्यक्ति के बारे में बताना होता है तो हम उसकी कद-काठी, उसके रंग-रूप, उसकी सीरत-सूरत, हाव-भाव, बातचीत के तरीके के बारे में बताते हैं और अमुक व्यक्तिकी छवि हमारे मन-मस्तिष्क पर अंकित हो जाती है, मुंशीजी भी जब पात्रों का परिचय कराते हैं तो तमाम तरीके की उपमाएँ भी देते चलते हैं जिससे पाठक को उस व्यक्तिकी छवि अपने मस्तिष्क में बनाने में आसानी हो। वकील साहब और रतन के बारे में वे किस प्रकार पाठकों से रु-ब-रू करातें हैं, देखिए- "वकील साहब की उम्र साठ से नीचे न थी। चिकनी चाँद आसपास के सफेद बालों के बीच में वारनिश की हुई लकड़ी की भाँति चमक रही थी।

मूँछें साफ थीं, पर माथे की शिकन और गालों की झुर्रियाँ साफ बतला रहीं थीं कि यात्री संसार-यात्रा से थक गया है।"[22]/ "सौंदर्य का उसके रूप में कोई लक्षण न था। नाक चिपटी थी, मुख गोल, आँखें छोटी, फिर भी वह रानी-सी लगती थी।"[23]

पात्रानुकूल भाषा के साथ ही साथ परिवेशानुकूल भाषा का भी प्रयोग उपन्यास में देखने को मिलता है। जैसे किसी पात्र की छवि हमारे मस्तिष्क पर अंकित हो जाती है, वैसे ही जब मुंशीजी परिवेश का सृजन करते हैं तो वहाँ का वातावरण, आस-पास की वस्तुएँ, उस परिवेश की स्पष्ट छवि भी हम देखने में सफल होते हैं। यह मुंशीजी का भाषाई कमाल नहीं तो और क्या है - " संध्या हो गई थी, म्युनिसिपैलिटी के अहाते में सन्नाटा छा गया था। कर्मचारी एक-एक करके जा रहे थे। मेहतर कमरों में झाड़ू लगा रहा था। चपरासियों ने भी जूते पहनना शुरु कर दिया था। खोंचेवाले दिन-भर की बिक्री के पैसे गिन रहे थे, पर रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था।"[24]

सार रूप में हम कह सकते हैं कि गबन में मुंशीजी ने अपनी भाषाई कलात्मकता के चलते कथानक का उत्कर्ष किया है। यथासंभव उचित शब्दों के प्रयोग के चलते भाषा चारूत्व युक्तप्रतीत होती है। जहाँ कहीं उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी शब्दों की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ उन शब्दों का प्रयोग और जहाँ कहीं तात्समिक प्रांजल खड़ी बोली की आवश्यकता बन पड़ी है वहाँ पर वैसे शब्दों का प्रयोग। भाषा पात्रानुकूल एवं परिवेशानुकूल भी है, हाँ यह जरूर है कि जहाँ कहीं देवीदीन और जोहरा जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद विचार प्रकट करने लग जाते हैं वहाँ भाषा उबाउ हो गयी है, हालाँकि उपन्यास में ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम हैं। अधिकांश स्थलों पर भाषाई सौष्ठव अद्वितीय है।

संदर्भः-

1. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं-पृ. सं. 734
2. गबन, मुंशी प्रेमचंद, फिंगरप्रिन्ट हिन्दी पब्लिकेशन्स, सं.2023, पृष्ट सं.- 14
3. वही, पृ.सं.- 103
4. वही, पृ.सं.- 14
5. वही, पृ.सं.- 14
6. वही, पृ.सं.- 14
7. वही, पृ.सं.- 14
8. वही, पृ.सं.- 14
9. वही, पृ.सं.- 48
10. वही, पृ.सं.- 153
11. वही, पृ.सं.- 184
12. वही, पृ.सं.- 194
13. वही, पृ.सं.- 227
14. वही, पृ.सं.- 16
15. वही, पृ.सं.- 24
16. वही, पृ.सं.- 24
17. वही, पृ.सं.- 137
18. वही, पृ.सं.- 32
19. वही, पृ.सं.- 36
20. वही, पृ.सं.- 34
21. वही, पृ.सं.- 135
22. वही, पृ.सं.- 49
23. वही, पृ.सं.- 82
24. वही, पृ.सं.- 105

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज,
गोण्डा।

मीड़िया और हिंदी साहित्य

शरण्या एस एस

आदिकाल से समाज के उत्थान के लिए साहित्य एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना, तो साहित्य समाज का पदप्रदर्शक माना जाता है। जैसे हिन्दी साहित्य में कबीर, भारतेंदु, प्रेमचन्द आदि साहित्यकारों की रचनाएँ इसका उत्तम उदाहरण हैं।

ऐसे मीडिया भी समाज का आईना है। इसके कारण मीडिया समाज को अपनी तरह से अभिव्यक्तिदे रहा है। आज उन साहित्यकारों का काम मीडिया भी कर रही है। इसके अलावा मीडिया तथा साहित्य का उद्देश्य पाठकों या दर्शकों को मनोरंजन करना, ज्ञान देना अपनी सोच बदलने का मौका देना आदि हैं। तो कह सकते हैं कि मीडिया और हिन्दी साहित्य आपस में जुड़े हुए हैं। इन दोनों माध्यमों का मूल उद्देश्य एक हैं। आज प्रिंट मीडिया, इलक्ट्रॉनिक मीडिया तथा न्यू मीडिया ने हिंदी साहित्य के सभी तबकों तक पहुँच कर अपना स्थान बना लिया है।

प्रिंट मीडिया और हिन्दी साहित्य : प्रिंट मीडिया के अंतर्गत समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ होते हैं। समाचार पत्र दैनिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, छमाही और वार्षिक आते हैं।

प्राचीन काल से ही हिंदी साहित्य और प्रिंट मीडिया के बीच गहरा संबंध रहा है। हमको देख सकते हैं कि पहले से लेकर ज़्यादा मशहूर साहित्यकार सबसे पहले पत्रकार थे फिर वे साहित्यकार हुए। पहले पहल समाचार पत्र के दौरान साहित्य के माध्यम से लेखकों आम लोगों के लिए जागरण एवं नव निर्माण करना शुरु किया। आज़ादी के समय हमारी राष्ट्रवादी कवि रामधारी सिंह दिनकर अपनी साहित्य के माध्यम से आह्वान किया: "कितनी मणियाँ लुट गईं, मिटा कितना मेरा वैभव अशेष/तू ध्यानमग्न हो रहा, इधर वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।"

साहित्य का विकास पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। आज भी कई हिन्दी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। "समाचार पत्र सूचना देते हैं, जबकि साहित्य सूचनाओं को विशिष्ट कलेवर में प्रस्तुत करता है।"

मुंशी प्रेमचन्द जी ने कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं का भी संपादन किया था। इसके ज़रिए उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में हो रही घटनाओं की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की। 1932 में महादेवी वर्मा ने चाँद नामक महिलाओं की पत्रिका की ज़िम्मेदारी ली। हरिशंकर परसाई ने वसुधा नामक साहित्यिक पत्रिका का संपादन और प्रकाशन हरिशंकर परसाई ने किया।

मोहन राकेश 1962-63 ई. में सारिका के संपादक रहे। हंस के संपादकीय सहयोगी के रूप में अर्चना वर्मा ने बीस वर्ष काम किया। निर्मल वर्मा ने पहले सांस्कृतिक रिपोर्टिंग के रूप में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए काम किया। 'कविवचनसुधा' नामक भारतेंदु हरिचंद्र की पत्रिका का स्थान आज भी बहुत अहम है। इसी तरह उत्कृष्ठ हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने ही हिंदी साहित्य के विकास यात्रा में एक सही नींव प्रदान की। हिंदी में साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में एक नया बदलाव लाया। लेकिन छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद का प्रवर्तन भी इसी साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। साथ ही साथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी संपादित सरस्वती के पत्रिका के कारण मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि बने। लेकिन सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को निराला बनानेवाली पत्रिका बाबू महादेव प्रसाद सेठ की 'मतवाला' पत्रिका थी। इंटर्व्यू लेखन में पद्म सिंह शर्मा और राजेन्द्र यादव, यात्रा वृत्त में राहुल सांकृत्यायन, शिवप्रसाद गुप्त, भगवत शरण उपाध्याय और सेठ गोविंददास, उत्तम साहित्यकार निकले।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और हिंदी साहित्य : इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत के लोकप्रिय माध्यम है रेडियो और टीवी. माना जाता है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तकनीकी क्राँति की आश्चर्यजनक देन है। रेडियो श्रव्य माध्यम और टी.वी. दृश्य एवं श्रव्य माध्यम है।

1921 में भारत में रेडियो का आगमन हुआ। पहली रेडियो पत्रकारिता की प्रस्तुति थी। साहित्यिक कार्यक्रमों को समय कम मिलता था। किंतु इसके ज़रिए रेडियो नाटक का आविष्कार हुआ। इसने साहित्यिक क्षेत्र को एक नई

सोच प्रदान की। रेडियो में आकाशवाणी का स्थान बहुत ऊपर है। आकाशवाणी के माध्यम से ही वे लोगों का मनोरंजन करते हैं। आकाशवाणी का प्रसारण क्षेत्र विशाल है तो यह हर व्यक्तितक बहुत जल्दी और आसानी से पहुँच जाएगा। श्रोता अपनी रुचि के अनुसार श्रवण करते हैं।

नाटक की प्रमुख विशेषता है कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, दृश्य, संवाद और उद्देश्य। ये सभी गुण रेडियो नाटक में भी होते हैं। रेडियो नाटक में शब्द एवं ध्वनि का प्रधानता है। 1927 में रेडियो नाटक का आरंभ हुआ। आज़ादी से पहले हिंदी रेडियो नाटक का अस्तित्व नहीं था। 1934 में हिंदुस्तानी भाषा में नाटक का पहला प्रसारण हुआ। 'ध्वनि एकांकी', श्रव्य नाटक 'रेडियो रूपक', रेडियो एकांकी, ध्वनि नाटक आदि रेडियो नाटक के अन्य नाम है। रेडियो नाटक एक श्रव्य नाटक है, लेकिन श्रोताओं को यह दृश्य नाटक के रूप में भी महसूस किया, क्योंकि इसकी प्रस्तुति शैली कुछ विशिष्ट थी। "दिल्ली केंद्र के उद्घाटन के साथ प्रसारित 'तरंग' नामक एकांकी उल्लेखनीय सिद्ध हुआ। इसी समय 'सन्नाटा' नामक कालजयी नाटक प्रसारित हुआ जिसमें निःशब्दता को कुछ विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से प्रतिध्वनित किया गया। इम्तियाज अली का रेडियो नाटक 'अनारकली' भी इसी समय प्रसारित हुआ। अन्य लेखकों में कृश्नचंदर, मंटो, शौकत थानवी, रहमानी, मुंशी और उपेन्द्रनाथ अश्क भी चर्चित रहे।"

इसके उपरांत सुमित्रानंदन पंत, अमृतलाल नागर, श्रीनारायण चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर, डॉ. नगेन्द्र, रामधारी सिंह दिनकर, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, हरिवंशराय बच्चन, हरिशंकर परसाई, नागार्जुन, धर्मवीर भारती आदि आकाशवाणी से जुड़ा। फिर मोहन राकेश का 'सुबह से पहले, गिरिजाकुमार माथुर का 'जनमकैद', भारतभूषण् का 'खाई बढ़ती गई', एम.एस. ठाकुर का कठपुतली, इकबाल का सूखा दरख्त, अमृत लाल नागर का 'गूँगी' काफी चर्चित हुए। कालांतर में रेडियो नाटक में परिवर्तन आया है।

दूरदर्शन के ज़रिए ही टेलीविज़न का विकाास यात्रा की शुरु आत हुई। 1960 में दूरदर्शन में साहित्यिक कार्यक्रम प्रारंभ हुए।

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं को टेलीविज़न ने संप्रसारित किया है। निर्मला, कर्मभूमि, गोदान, मैला आंचल, तमस, रागदरबारी, गणदेवता, श्रीकांत, चरित्रहीन, रथचक्र, मृत्युंजय, मालगुडी डेज़, मुझे चाँद चाहिए, नीम का पेड आदि साहित्य को दूरदर्शन ने संप्रेषित किया। लेकिन रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथों की कहानी दिखाया गया था, यह बच्चों तथा बुजुर्गों के लिए ज्ञान के साथ-साथ मनोरंजन का भी साधन था। दूरदर्शन ने कथा-साहित्य पर आधारित 'कथा सरिता' तथा 'एक और कहानी' नामक कार्यक्रम भी शुरु किया। 'साहित्य' हमारी मानसिकता, जीवन मूल्य, परंपराओं, उत्साह, उल्लास, संघर्ष, जय-पराजय, प्रगति, भावनाओं और संवेदनाओं का आईना होता है और यही साहित्य जब समाज से छिटक जाता है तब सामाजिक जीवन में विकृतियाँ उभरने लगती हैं। अतः ऐसे महत्वपूर्ण साहित्य को दूरदर्शन अपने छोटे पर्दे पर प्रस्तुत कर सामाजिक संस्कार और जीवन मूल्य को बनवा देता है।

प्रेमचन्द की नषा और नमक का दारोगा, मन्नू भंडारी की अकेली, शरतचंद्र की आखिरी इम्तहान और मान-अपमान, धर्मवीर भारती की बंद गली का आखिरी मकान, अमरकांत की डिप्टी कलेक्टर, यशपाल की सबकी इज्जत आदि कहानियाँ पटकथा में रूपांतरित होकर प्रस्तुत हुईं। आज टी.वी. के अंतर्गत दूरदर्शन के अलावा कई नई अन्य चैनल हैं। इसमें साहित्यिक संबंधी ज्ञान सारा समय मिलता है। प्रत्येक रूप से साहित्यिक चैनल भी आज मौजूद हैं। देख सकते है कि साहित्य के ज़रिए या साहित्य के आधार पर चैनलों का विकास होता है। कहना है कि टेलीविजन के धारावाहिक लेखन में एक सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें साहित्य से आप बहुत अधिक जुडे रह सकते हैं, बल्कि साहित्य इसका मूल आधार बन जाता है।

न्यू मीडिया और हिंदी साहित्य :मीडिया के अंतर्गत ब्लोग वेब, विकीपीडिया, सोशल मीडिया साईट्स, ई-मेल आदि आते हैं। इसका व्यापक प्रभाव के कारण लोग अब इसमें नील हुई है। आज प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की जगह न्यू मीडिया ने ले ली है।

न्यू मीडिया इंटरनेट की मदद से चलाया जाता है। पहले सूचनाओं के प्रचार प्रसार इतना सरल नहीं था जितना आज

की है। हिंदी साहित्यिक क्षेत्र की विस्तृति के पीछे न्यू मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। न्यू मीडिया के दौरान वेब पत्रकारिता, ब्लॉग, अन्य सोशल मीडिया आदि के कारण हिन्दी साहित्य की समृद्धि बढ़ रही है। आज साहित्य का भण्डार है न्यू मीडिया, क्योंकि इसमें पुराने और नए सभी साहित्य समाहित है। साहित्य ऑनलाइन में और मुफ्त में, बहुत जल्दी और आसानी से करीब आ सकते हैं। कभी-कभी हिंदी साहित्य की कुछ प्रसिद्ध कृतियों की पुस्तक हमें उपलब्ध न हो, लेकिन न्यू मीडिया की सहायता से उपलब्ध होगी। अब इससे साहित्यिक कृतियों को दूसरों के सामने आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है तो पहले से अधिक लेखक बढ़ रहे हैं तथा इसके माध्यम से पैसा कमाने की कोशिश भी कर रहे हैं। यही हिन्दी साहित्य की उपलब्धि भी है।

आज इंटरनेट पर हिंदी की कम से कम 20 स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएँ नियमित रूप से चल रही है। इनमें प्रमुख हैं हिंदी नेस्ट, सृजनगाथा, अभिव्यक्ति शब्दावली, साहित्य कुंज, छाया, गर्भनाल, भारत दर्शन, वेब दुनिया, मप्तीलोक, कृत्या, रचनाकार, कलायन और जयपुर से निकल रही इन्द्रधनुष इंडिया। 'भारत दर्शन' न्यूज़ीलैण्ड से प्रकाशित पहली हिंदी पत्रिका और कृत्या कविता की मासिक पत्रिका हैं। छत्तीसगढ़ की एकमात्र पत्रिका है 'सृजनगाथा'। इन सबको ऑनलाइन में बहुत प्रशंसा मिली है। लेकिन मुद्रित पत्रिकाएँ भी पूर्ण रूप से इसपर मौजूद है, जैसे हंस, ज्ञानोदय, ताप्तीलोक, वागर्थ, नया, तद्भव, अन्यथा आदि। इसके अलावा प्रेमचन्द, कबीर, तुलसीदास, अमीर खुसरो आदि की रचनाएँ 'इंडिया इन इंडियन डॉट कॉम' में, हिंदी कहानियों और गज़लों 'मल्हार' में, समकालीन कविता, साहित्य, कहानियाँ एवं आलोचना 'अन्यथा' में भी निहित है।

ऑनलाइन पत्रकारिता आज बढ़ रही है। आज ऑनलाईन हिंदी पत्रकारिता ढेर सारी उपलब्ध हैं। इसके सहारे से विदेशों में बसे भारतीयों को 'अभिव्यक्ति और प्रस्तुति' मिलती हैं। माना जाता है कि ऑनलाइन पत्रकारिता का प्रथम चरण 1982 से 1992 तक, दूसरा 1993 से 2001 तक और तीसरा चरण 2002 से अब तक हैं।

ब्लोगिंग ने हिंदी साहित्य को एक नया चेहरा दिया है। आज हर कोई यह कहना पसंद करता है कि मैं एक 'ब्लॉगर हूँ, ब्लॉग आज के समाज में उतना महत्वपूर्ण है। हिंदी में साहित्यिक ब्लॉग की संख्या भी कम नहीं हैं। इसपर समाज में उभर रहे मुद्दे को लेकर शोर मचा हुआ हैं। यह बहुत तेज़ी से लोकप्रिय हुआ है। साहित्य के विभिन्न विधाओं में ब्लॉग है तो अपनी रुचि के अनुसार पाठक को चुना जा सकता है। लेकिन साहित्यिक ब्लॉग के ज़्यादातर पाठक उसी क्षेत्र के होते हैं। भारत के अलावा विदेश में रहनेवाले लोग भी इस क्षेत्र में भाग लेता है। यह ऐसा एक मंच है कि जो लोग साहित्य में रुचि रखते हैं या जो अभी अभी लिखना शुरु कर रहे हैं, वे तनाव मुक्त होकर लिख सकते है, क्योंकि अनुभव को यहाँ मायने नहीं रखता। इसके माध्यम से कई लेखक को आगे बढ़ सकते हैं। 'हिन्दी ब्लॉगर्स द्वारा शुरु किये गए 'अक्षरग्राम', 'नारद', 'सर्वज्ञ', 'निरंतर', 'परिचर्चा', 'शून्य', 'ब्लॉगवाद', 'बुनो कहानी' और 'अनुगूँज'। इसके अतिरिक्त अनुराग वत्स का 'सबद', प्रभात रंजन का 'जानकी पुल', 'अभिव्यक्ति', 'अंतर्मन', 'अंदाज-ए-बयाँ', 'अनकही बातें', अभिरंजन कुमार का 'ब्लॉग अभिरुचि', 'अरुण उवाच', 'अर्ज किया है', 'अल्पविराम', 'प्रपंचतंत्र', 'भाव विचार' आदि उल्लेखनीय है।

कहा जाता है कि एक आम आदमी को आम से खास बनाने की ताकत न्यू मीडिया के पास हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. काव्य सुमनः महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, पृ.सं. 90
2. हिंदी साहित्य और मीडियाः डॉ. सचिन मिश्र, पृ.सं. 124
3. मीडिया और हिंदी साहित्यः राजाकिशोर, पृ.सं. 89
4. टेलीविजन - साहित्य और सामाजिक चेतनाः डॉ. अमरनाथ अमर, पृ.सं. 8
5. टेलीविजन लेखनःअसगर वजाहत, प्रभात रंजन,पृ.सं. 70
6. हिंदी साहित्य और मीडियाः डॉ. सचिन मिश्र,पृ.सं.149
7. दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण 2011, संपादकीय पृष्ठ।

लेखक : शरण्या एस.एस
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
महात्मा गाँधी कॉलेज,
तिरुवनन्तपुरम। केरल विश्वविद्यालय

सह लेखक
डॉ. गायत्री एन
असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कालेज, तिरुवनन्तपुरम।
केरल विश्वविद्यालय

तुम्हें बदलना ही होगा : अपमान के दर्द से मुक्ति की ओर दलित नारी का बदलाव

दिव्या एम एस

"मेरी ताकत मैं स्वयं हूँ", मेरी संरक्षक मैं स्वयं हूँ, मैं अपनी मालिक स्वयं हूँ , मेरी हिम्मत और सफलता ही मेरी हमसफ़र है।" ये पंक्तियाँ हिंदी के वरिष्ठ लेखिका डॉ. सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' से हैं।

डॉ. सुशीला टाकभौरे का दूसरा उपन्यास है 'तुम्हें बदलना ही होगा', जो 2015 में प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में पूरे देश में हुए नवजागरण के द्वारा दलित समाज में होनेवाले बदलाव का चित्रण है। दलित प्रतिरोध का उज्ज्वल आकार को लेखिका यों खींचती है -"वर्णभेद और जातिभेद का विरोध करने के लिए दलित लोग सड़कों पर उतरने लगे हैं। नारेबाजी करना, घरना, प्रदर्शन, हड़ताल जैसे कार्यों से लोग अपना विरोध, आक्रोश और विद्रोह प्रकट करने लगे हैं। नए विचारों की स्थापना के लिए प्रगति -परिवर्तन और समाज आंदोलन के कार्य तेज़ी से चल रहे हैं।"[1] वर्तमान दलित समाज में प्रतिरोध की जागृती है, जो दलित समाज में समूचे बदलाव लाया है।

समाज की पुरानी परम्पराओं वर्णवादी पुराणपंथी विचारों और पुराने रीति-रिवाज़ों को बदलने और पुरानी स्त्री परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ने को दलित नारियों से लेखिका का आह्वान है प्रस्तुत उपन्यास। खुद की, दूसरों की और समाज की बदलाव के लिए सबसे सशक्त माध्यम है - शिक्षित होना। लेखिका अपनी नायिका महिमा भारती के ज़रिये शिक्षा प्राप्ति द्वारा बदलाव का चित्रण यों किया कि "महिमा आरक्षण का लाभ लेते हुए स्कालरशिप और फ्रीशिप के साथ आगे पढ़ती गयी। मेट्रिक, बी.ए , एम. ए करने के बाद उसने बी.एड और पीएच. डी की डिग्री भी प्राप्त कर ली। अब वह शांतिनिकेतन महाविद्यालय में प्राध्यापिका के पद के लिए उम्मीदवार है।"[2] परिधि से केंद्र की ओर अभियान शिक्षा प्राप्ति से ही संभव हो सका है।

उपन्यास की शुरुआत में ही लेखिका दलित नारियों की जिंदगी बदलने के बड़े -बड़े सपने देख़ने की प्रेरणा देती है। उपन्यास के आरम्भ में लेखिका लिखती है -"महिमा के मन में हज़ार -हज़ार सपने उमड़ने लगे हैं। वह सोचने लगी हैं ,अब वह दिन दूर नहीं,जब वह भी उच्च सम्मानित पद पर आसीन होकर सम्मान के साथ नौकरी करेगी। अब कोई भी उसे जाति के नाम पर छोटा नहीं समझेगा ,उसे कोई भी अब निम्न जाति का नहीं कहेगा"[3] बड़े - बड़े सपने देखना और फिर इन सपनों को साकार करने के लिए कार्यरत होना ही बदलाव का बीजवपन है।

दलित नारी को अपनी जिंदगी में बदलाव लाने के लिए, अपने दर्दमयी जीवन से मुक्ति के लिए, अपनी स्वतंत्रता के लिए और अपनी प्रगति के लिए खुद ही प्रयास करनी है। बाहरी प्रेरणाओं की प्रतीक्षा करते रहने के बिना खुद पर भरोसा करके अपनी सफलता को हासिल करनी है। लेखिका हर नारी के लिए प्रेरणा दिलाते हुए लिखती है कि "महिमा अपनी सफलता का श्रेय अपने श्रम, संघर्ष, समझदारी और दूरदर्शिता को देती है।"[4] महिमा परिश्रमी,समझदार एवं दूरदर्शी नारी है यही खूबियाँ उनको बदलाव की ओर बढ़ाती है।

महिमा की जिंदगी में जो भी बदलाव हुई है जिसकी मूल प्रेरणा महिमा खुद ही है। अपनी जाग्रता, समझदारी एवं प्रयास है। हर दलित नारी को महिमा की भांति अपने बल पर स्वावलम्बी होकर आगे बढ़ना है। महिमा के शब्दों में - "मेरी ताकत मैं स्वयं हूँ , मेरी संरक्षक मैं स्वयं हूँ, मैं अपनी मालिक स्वयं हूँ , मेरी हिम्मत और सफलता ही मेरी हमसफ़र है।"[5] महिमा की बातों में ताकत है, हिम्मत है, अपनी जैसी नारियों के लिए प्रेरणा भी है।

महिमा हमेशा सकारात्मक विचार रखने वाली सशक्त नारी है। उनके मन के विचारों से वह हमेशा ताकतवर महसूस करती है। लेखिका लिखती है कि "महिमा के मन में अनेक प्रकार के विचार आते रहे। यह विचार उसे हिम्मत देता रहा, 'यदि वह डरेगी, तो सभी उसे डराएंगे। वह हिम्मत से काम लेगी, तो कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता।' यह बात वह जानती थी।"[6] यहाँ महिमा की समझदारी एवं खुद पर भरोसा स्पष्ट नज़र आ रही है। नारी को डरके नहीं हिम्मत और धीरज होकर जीना चाहिए। डरने के लिए तैयार हैं तो डराने वालों की कोई कमी नहीं हैं। अगर हिम्मत से काम करेंगे तो उनसे टकराने से पहले कोई भी हो दुबारा सोचेंगे।

लगातार बदलते समाज में दलित जीवन को न बदलने वाली कुछ रूढ़ियाँ आज भी मौजूद हैं। वर्तमान समाज में

दलित जीवन में बदलाव लाने के लिए इन्हीं परंपरागत रूढ़िओं को तोड़ने का प्रयास 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में हम देख सकते हैं। मुख्य रूप से दलित नारी के जीवन में जाग्रति द्वारा बदलाव की घोषणा इसमें है। सुशीलाजी के शब्दों में -"जागरूकता और सबलता पाकर स्त्री किसी भी प्रकार के शोषण से मुक्त हो सकती है। उच्च शिक्षा और उच्च पदों पैर नौकरी करनेवाली स्त्रीयाँ भी शोषण की शिकार बनाई जाती हैं। यदि उनमें जागरूकता होगी तो वे शोषण और अन्याय का विरोध अवश्य करेंगी।"[7] मात्र उच्च शिक्षा लेने से नहीं सतर्क रहने से, जागरूक रहने से ही दलित नारी शोषण के शिकार होने से बच पायेगी।

उपन्यास की नायिका महिमा के जुबान से निकलनेवाले एक- एक शब्दों में लेखिका दलित समाज की विशेषकर दलित नारी मुक्ति की अपने अंतर्मन की प्रतिरोधी भावना को दर्शाती है। उपन्यास की नायिका महिमा भारती अपनी आतंरिक बल से, संस्थाओं के बल से, कानून के बल से संघर्ष एवं प्रतिरोध करती है। एक सवर्ण युवा से दोस्ती, प्यार और आगे चलकर विवाह से उसकी जातीय असमानता के खिलाफ उमड़ती प्रतिरोधी विचारधारा को स्पष्ट करती है।

वैवाहिक जीवन में भी ससुरालवालों के व्यवहारों से निराश महिमा कानून की मदद से अपने प्रतिरोध को जारी रखती है। जब ससुराल में महिमा के खिलाफ साजिश रची गयी तब वह कानून की बलबूते इस संकट स्थिति से मुकाबला करने को यों सोचती है कि -" अपना कोर्ट मैरिज का सर्टिफिकेट ,इतना आसान नहीं है बच्चू, मुझे घर से बाहर निकलना। मैं भी क़ानून -कायदे जानती हूँ। सबको जेल की हवा खिला दूँगी।"[8] शिक्षित होना एवं कानूनी जानकारी रखना नारी की हिम्मत और तेज़ बनाती है।

औपचारिक रूप से उच्च शिक्षा पाना, नौकरी करना उसकी प्रगतिशील प्रतिरोध है। लगातार भयानक परिस्थितियों से गुज़रते हुए भी हार न मानना, अंत तक दलित नारी की मुक्ति के लिए प्रयासरत होना, पारिवारिक संकटों में धीरज रहना उसका अभूतपूर्व मनोबल एवं दृढ़ प्रतिरोध को व्यक्त करती है। जिस रफ़्तार से समाज बदलती रहती है उसी रफ़्तार से दलित जीवन में बदलाव हो। यही उम्मीद लेकर महिमा का प्रयास आगे बढ़ती है। लेखिका ने उपन्यास की शुरुआत में जो सपने देखने का आह्वान किया था, उपन्यास के अंत तक आते हुए उन सपनों का साकार हो जाने का उम्मीद दिलाती है। लेखिका लिखती है - "पटाके फूटने की आवाज़ आने लगी। महिमा, धीरज कुमार और उनके दलित आंदोलन के साथी अपनी खुशियों का इजहार कर रहे हैं, उनके प्रयत्नों से समाज के पुराने दृश्य बदल रहे हैं, समाज में उनके दायरे बदल रहे हैं। सदियों से चली आ रही वर्ण -जाति भेद की रीति -परम्परायें और नीतियां बदल रही है। सबके मन में ये भाव मुखरित हो रहे है ,तुम्हें बदलना ही होगा..... ।"[9] बचपन से हुई अपमान की वेदना से मुक्ति के आनंद का बदलाव महिमा के जीवन में हुई रौनक है।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण उपन्यास दलित जागृति और दलित परिवर्तन का सन्देश देता है। दलित समाज के उद्धार में दलित जागृति का ही योगदान है। शिक्षा प्राप्ति, संस्थाओं का संगठन एवं कानूनी सहायता से यह जागृती संभव हुई है। सम्पूर्ण उपन्यास में यह आह्वान है कि तुम्हें बदलना ही होगा अगर नहीं बदलेगी तो शोषण का शिकार होना पडेगा। ये बदलाव तभी संभव है पिछड़े समाज के लोग भी शिक्षा प्राप्त करें और नौकरी पायें। शैक्षिक और आर्थिक स्तर पर प्रबल होना ही बदलाव के रास्ता खुलाने का उपाय है। दलित नारी जागृति एवं मुक्ति के लिए भी यही एकमात्र उपाय है। महिमा भारती का शिक्षित होना, नौकरी पाना ,समाज सुधार के कार्य में और दलित नारी मुक्ति के संघर्ष में लगे रहना इसका उदहारण है। वर्तमान समय में दलित समाज में हुए परिवर्तनों के लिए दलित मुक्ति आंदोलन के लिए कार्यरत संस्थाओं का भी योगदान महनीय है। प्रस्तुत उपन्यास के "अखिल भारतीय समाज जागृति एवं समस्या निवारण संस्था " इसका उदहारण है। उपन्यास के अंत में संस्था द्वारा चलाई गयी अभियान की सफलता द्वारा दलित समाज के लिए उम्मीद मिलती है। उपन्यास यही दर्शाता है कि दलित समाज का बदलाव संभव है और ये बदलाव ज़ारी रहेगा।

संदर्भः

1. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ ;11
2. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ;12
3. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ;11
4. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ ;12
5. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ ;132
6. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे-पृ;131-132
7. संवाद ज़ारी है -सुशीला टाकभौरे -पृ 25
8. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ ;131
9. तुम्हें बदलना ही होगा -सुशीला टाकभौरे -पृ ;240

शोधछात्रा, हिंदी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

अंबिकासुतन माङ्ङाड़ की कहानियों में प्राकृतिक परिवेश

डॉ ज्ञानेश्वरी सी

प्रकृति और मानव का संबंध अनादिकाल से है। आदिम मानव का जन्म जंगल में हुआ और वहीं से संपूर्ण मानव जाति के विकास का भी प्रारंभ हुआ। परंतु मानव जैसे-जैसे विकास, संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तुंग शिखर को पार करता गया, वह प्रकृति से अलग होता गया। अपनी ज़िंदगी को सुंदर और सुविधापूर्ण बनाने की, अपनी एक नई और अलग दुनिया बनाने की होड़ में वह प्रकृति और उसके वरदानों को भूलता गया, उनका नाश करता गया, जिससे आज उसके पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) की नींव हिलने लगी है। उसने अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मार दी है। आज उसे अपनी मूर्खता का अहसास होने लगा है और मानव फिर से प्रकृति की ओर उन्मुख होता दिखाई दे रहा है।

केरल की अपनी एक अलग संस्कृति और पहचान है जिसे रूपायित करने में यहाँ की प्रकृति ने अहम भूमिका निभाई है। लेकिन आधुनिकता की होड़ ने केरल की संस्कृति के जड़ों को हिला दिया है। यहाँ की वनस्थलियाँ, खेत-खलिहान सब नष्ट हो गए हैं और नदियाँ भी मलिन एवं शुष्क होते जा रहे हैं। संस्कृति, पारिवारिक जीवन, मिट्टी, पर्यावरण, स्वास्थ्य सब कुछ एक के बाद एक हमसे छिन गया। अतः केरल की प्रकृति दुविधाग्रस्त हो गई है। अपनी कहानियों के द्वारा अंबिकासुतन जी ने इस दयनीय दशा के खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

मलयालम के विख्यात साहित्यिक अंबिकासुतन ने उपन्यास, कहानियाँ और कई लेख भी लिखे हैं। साथ ही वे एक जानेमाने पर्यावरणवादी (environmentalist) भी हैं। अपनी रचनाओं के लिए उन्हें कई सारे पुरस्कारों से नवाज़ा भी गया है। उन्होंने अपनी कहानियों में मानव से ज़्यादा प्रकृति और उसके अन्य जीव-जंतुओं को मुख्य पात्र बनाकर तथा मिथकों द्वारा पाठकों तक अपने विचारों को पहुँचाने का प्रयास किया है।

संस्कृति और प्रकृति का गहरा संबंध है। जितना मानव सुसंस्कृत बनता जा रहा है उतना ही वह प्रकृति को हानि पहुँचाता रहा है। विकास के नाम पर जंगल के पेड़ों को काटा जाता है, ढीलों को तोड़ा-मरोड़ा जाता है और नदियों को नामावशेष बनाया जाता है। इन सबका ज़िक्र वायिल्लाक्कुन्निलप्पन नामक कहानी में है। बड़े-बड़े मकानों को बनानेवाला धनिक औसेप्पु मुतलाली (मालिक) मिट्टी खोदने के यंत्र की सहायता से वहाँ के तिरुवेशनकुन्नु नामक ढीले को तोड़कर नेत्रावती नदी के पानी में डाल रहा है ताकि नदी सूख जाए और वह वहाँ पर हाउसिंग कॉप्लक्स बना सके। इस कहानी में कहानीकार ने एक केरलीय मिथक का सन्निवेश भी किया है। माना जाता है कि केरलीय जनता वररुचि और परयि की संतानें हैं और दोनों ने इस ढीले पर वास किया था। उनकी अंतिम संतान को मुख नहीं था। यहाँ पर यंत्र उस ढीले को तोड़ रहा है जो संपूर्ण केरलीय जनता के वंश का आधार माना जाता है। अपने वंशवृक्ष की जड़ें खोदकर हम अपनी एक नई दुनिया बसाना चाहते हैं। ऐसी हालत में कथानायक के रूप में लेखक इसके खिलाफ आवाज़ उठाने की कोशिश करता है पर तभी उसे पता चलता है कि उसका मुख नहीं है। यहाँ पर कहानीकार ने सब कुछ नष्ट होने की हालत में भी कुछ बोल न पाने की, विरोध न कर पाने की आज के मानव की निस्सहाय अवस्था को दर्शाया है।

'वितच्चत', 'पोट्टियम्मत्तेय्यम', 'पंजुरुलि' आदि कहानियों में उत्तर केरल के प्राचीन मिथक तेय्यम को माध्यम बनाकर स्त्री एवं दलित समस्याओं को और प्रकृति पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप से होनेवाले दुर्घटनाओं पर प्रकाश डाला है। विकल विकास के करालहस्तों में मजबूर विज्ञान प्रकृति और मानव के साथ लड़ रहा है। वह प्रकृति का नाश कर रहा है और इस लड़ाई में मानव भी हारा हुआ है। एंडोसल्फान नामक विषैले कीटनाशक के कारण एक गाँव के सारे लोग रोग और भूख से तड़प रहे हैं। उन्हें अपनी भूख मिटाने के लिए पूरे परिवार की यहाँ तक कि आठ साल की छोटी और बीमार बच्ची की भी गुर्दों को बेचना पड़ रहा है।

एक ओर कहानीकार ने केरल के स्थानीय मिथक का सहारा लिया है तो दूसरी ओर भारत के उच्चतम मिथक का भी कहानियों में समावेश किया है। 'मंडूकोपनिषत्त्', 'रंडु मत्स्यंगल' आदि कहानियों में उन्होंने श्रीबुद्ध के मिथक के द्वारा अपनी बात को पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश की है। जिस राह पर श्रीबुद्ध ने धरती को भी दुखाए बिना यात्रा

की थी उस राह पर आज बड़े-बड़े मिट्टी खोदने वाले यंत्र और उसके मालिक पूरी धरती का नाश करके विराज रहे हैं। उनके कारण हमारी प्रकृति के छोटे-छोटे जीवों का वंश-नाश हो गया है, जिनमें प्रमुख हैं मेंढक। नदियों और पहाड़ियों के नाश से उनका आवास नष्ट हो गया है और आज वे वंशनाश की अवस्था पर पहुँच गए हैं इस ओर भी संकेत है।

विक्रमादित्य और वेताल की कहानी द्वारा 'वेतालम विरिच्च वला' नामक कहानी में बयोटेक्नॉलजी और इनफरमेशन टेक्नॉलजी के अनवरत लाभों के साथ हानि को भी व्यक्त किया है। क्लोणिंग के दुष्परिणाम, जो मानव के अमर बनने की इच्छा को सफल बनाने में सक्षम है जिससे सारा संसार एक बड़ी मुसीबत की ओर बढ़ रहा है, इस संदेश को भी कहानीकार ने विषय के रूप में चुना है।

भौगोलीकरण के विपत्तियों को भी अंबिकासुतन ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। टूरिसम के नाम पर, सुख-सुविधाओं को बढ़ाने के लिए हमारे खेतों और नदियों में मिट्टी डालकर वहाँ पर बड़े-बड़े मकान और हवाई-अड्डे बनाए जा रहे हैं। इससे हमारा भोजन और पानी दोनों हमसे छीना जा रहा है। 'कडलक्काष्चकल', 'दैवत्तिन्टे नाडु' आदि कहानियों में इस ओर संकेत है। उनका मानना है कि विदेशी तो आज आयेंगे और कल दूसरी जगह चले जायेंगे। लेकिन उस वक्त हमारे पास वापस जाने के लिए न धरती होगी न नदियाँ। प्रकृति का यह नाश मनुष्य वंश को भी नाश के कगार पर पहुँचा रहा है इस बात का वैज्ञानिक पुष्टीकरण भी आज हमको मिल रहा है। कल-कारखानों से बाहर आनेवाले विषैले धुआँ अंतरिक्ष में जमकर पूरी धरती और अंतरिक्ष के तापमान को बढ़ा रहे हैं जिससे हिमालय जैसा पर्वत भी पिघलने लगा है। यह सब एक न एक दिन दिनोसर के समान विकराल रूप धारण कारण पूरे मानव जाति को खा जाएगा। इस भयानक अवस्था को 'पुष़जीवि' नामक कहानी में प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

जिस प्रकार हमारी नसें हमारे शरीर के सभी भागों में आवश्यक वस्तुएँ पहुँचाकर उसकी पुष्टि करता है उसी प्रकार नदियाँ और नाले भी पूरी धरती की पुष्टि करते हैं। नदी और नाले हमारे शरीर के नसों के समान हैं। जिस दिन ये सूख जाएँगे या उनका बहाव थम जाएगा उस दिन हमारी धरती बंजर बन जाएगी। कृषकों ने जिस धरती को पानी से सींचकर उससे सोना उगाया था वह कृषक संस्कृति भी आज नष्ट हो रही है। आधुनिक पीढ़ी इन खेतों को बेचकर नगरों में ऐशो-आराम की ज़िंदगी बिताते हैं। इससे हमारी प्रकृति और संस्कृति दोनों हमसे छूट रहे हैं इस बात को व्यक्त करने का प्रयास 'जलसेचनपद्धतिकल' नामक कहानी में देख सकते हैं।

हमारी ज़िंदगी इतनी तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ रही है जिससे बच्चों से उनका बचपन, बूढ़ों से उनकी यादें सबकुछ अलग हो जाते हैं। पेड़-पौधों और खेतों से हरी-भरी धरती सबके लिए केवल सपना मात्र बनकर रह जाता है । लेकिन सचाई तो यह है कि प्रकृति से बिछड़कर मानव का जीवन संभव नहीं है। इसलिए मानव से प्रकृति के पास वापस जाने का संदेश आनत्तारा कहानी में है। कहानी में हाथी अपनी पुरानी ज़िंदगी में वापस लौटना चाहता है लेकिन वहाँ पर कोई रास्ता बचा ही नहीं होता है। इसलिए मजबूर होकर उसे कहना पड़ा कि मुझे ज़ंजीरों में डाल दो। कहानीकार संकेत देना चाहता है कि मानव की भी यही हालत होने वाली है। अतः उससे पहले मानव को जागृत होना है।

जैसे-जैसे मानव आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, उसका जीवन सुविधापूर्ण बनता जा रहा है, उसके मन से मानवीयता का अहसास मिटता जा रहा है। जितनी ममता अन्य पशु-पक्षियों के बीच में है उतना तक आज मानव के बीच में नहीं दिखाई दे रहा है। अतः वह आज जानवरों से भी गया-गुज़रा है, इस बात को 'रंडु वेल्लक्कडुवकल' कहानी द्वारा व्यक्त किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आधुनिकता और विकास के नाम पर मानव ने अपनी संस्कृति, प्रकृति, जंगल, नदियाँ, सागर, पहाड़, बचपन, बुढ़ापा यहाँ तक कि मनुष्यता भी खो दी है। मानव अपने को प्रकृति से अलग स्वतंत्र मानने लगा है। परंतु न तो प्रकृति मानव से अलग अस्तित्व रखता है और न ही प्रकृति से अलग रहकर मानव का कोई अस्तित्व हो सकता है। इसी सचाई को याद दिलाने की कोशिश अंबिकासुतन माङ्ङाड ने अपनी कहानियों द्वारा की है।

सहायक ग्रंथ

1.मलयालत्तिन्टे परिस्थिति कथकल : कुन्नुकल पुषकल - डॉ.अंबिकासुतन माङ्ङाड
2.आनत्तारा - डॉ.अंबिकासुतन माङ्ङाड
3.रंडु मत्स्यंगल - डॉ.अंबिकासुतन माङ्ङाड
4.रंडु वेल्लक्कडुवकल - डॉ.अंबिकासुतन माङ्ङाड

असिस्टेंट प्रोफसर, हिंदी विभाग
नेहरु आर्ट्स एंड सयन्स कॉलेज, कांजंगाड, कासरगोड।

जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद इत्यादि : चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ अशोक कुमार

समाज में सभी प्रकार के परिवर्तनों को प्रगति नहीं कहा जा सकता जो समाज के विभिन्न वर्गों समूहों या समुदायों के विकास और प्रगति में अवरोध हो, समाज की एकता, सामूहिकता, सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंधों में विघ्न उत्पन्न करें इस प्रकार की समस्याओं को सामाजिक समस्या कहा जाता है। जातिवाद, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद, पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट, राजनीति में अपराधिकरण आदि समस्याएँ मात्र व्यक्तिगत समस्या ही नहीं अपितु यह सामान्य रूप से जनसाधारण को प्रभावित करती है। जिसका दुष्प्रभाव पूरे समाज एवं राष्ट्र पर पड़ता है। पाश्चात्य विद्वान रेन हार्ट ने सामाजिक समस्या की यह कहकर व्याख्या की है कि "यह वह स्थिति है जिससे समाज का एक खंड या एक बड़ा भाग प्रभावित होता है और जिसके ऐसे हानिकारक परिणाम हो सकते है अथवा होते हैं जिनका सामूहिक रूप से समाधान संभव है। इस प्रकार किसी सामाजिक समस्यात्मक स्थिति के लिए कोई एक या कुछ व्यक्ति उतरदायी नहीं होते और इस पर नियंत्रण पाना एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के बस की बात नहीं होती। इसका उत्तरदायित्व सामान्य रूप से पूरे समाज पर होता है।"[1] आज भारतीय समाज असंख्य समस्याओं से घिरा हुआ है फिर भी समाधानों की कोई कमी नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश समय परिवर्तन के साथ समस्या और समाधान के बीच कोई सामंजस्य न होने के कारण समस्याएँ आज भी जीवित हैं और समाधान प्रायः मृत अवस्था में है। यदि हमें भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं को दूर करना है तो समस्त भारतीयों को चिंतन जगत में प्रवेश कर उन समस्याओं का निदान करना होगा जो समाज के विकास में बाधक सिद्ध हो रही हैं। आज मानव जाति वैश्वीकरण के दौर में औद्योगिक क्रांति एवं सूचना प्रोद्योगिकी के युग में जी रहे है, लेकिन पूरे विश्व में नस्लवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और संप्रदायवाद जैसी नकारात्मक प्रवृतियाँ मानवता के विकास में बड़ी चुनैतियाँ प्रस्तुत करती हैं। जिसके दुष्परिणाम स्वरूप समाज में ईर्ष्या, वैर, द्वेष और संघर्ष का दौर जारी है। प्राचीन काल में समाज को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए कर्म आधारित जाति व्यवस्था को सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखा गया लेकिन समय परिवर्तन के साथ-साथ जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था से सामजिक विखंडन की ऐसी प्रक्रिया शुरू हो गई जो मानवता के लिए अनुपयोग सिद्ध होने लगी। इसी जातिवाद के कारण चंद बुद्धिजीवी वर्ग भी राष्ट्र के विकास की उपेक्षा कर केवल जातिगत कल्याण के लिए चिंतन करने की नकारात्मक वृत्ति के कारण राष्ट्र का प्रगति पथ बाधित हो गया है। राष्ट्रीयता के लिए अभिशप्त इस प्रकार की कुव्यवस्था ने आधुनिक समाज को विखंडित कर दिया है। यह एक ऐसी कठोर संस्तरण व्यवस्था है जिसमें कुल परम्परा द्वारा व्यक्ति के सतत का निर्धारित होता है तथा जिसमें प्रायः सामजिक गतिशीलता संभव नहीं होती। इस व्यवस्था के निर्णायक प्रत्येक स्तृत अर्थात जाति के भोजन, विवाह, पूजा तथा पवित्रता-अपवित्रता संबंधी विशिष्ट नियम तथा संस्कार होते हैं जो उसे अन्य उपजातियों से अलग-थलग करते हैं।"[2] भारत में जाति व्यवस्था जन्मगत आधार पर सामाजिक विभाजन की वह कुरीति है जो एक ही समाज में मानव-मानव के बीच ऊँच-नीच की दीवार खडी करती है। श्रीमदभगवतगीता में "चातुरवरेण्यं मया सृष्टम गुणकर्म विभागशह"[3] अर्थात गुण वह कर्म के आधार पर समाज को चार वर्णों में बाटें जाने का उल्लेख किया गया है। जाति व्यवस्था का ऐतिहासिक कारण जो कुछ भी रहा हो लेकिन मानव प्राणी आत्मा ईश्वर की एक किरण है। हम मानव इसी को ऊँच और किसी को नीच कहकर अलग भितियों

का निर्माण कर मानव मन और उनके जीवन को संकुचित बना दिया है। ऋग्वेद कहता है कि "मानव जाति एक ही है- एकैव मानुषी जातिः। सब मनुष्य भाईः भ्रातरो मानवा सर्वे। सभी धर्म सिखाते है कि मानव प्राणी असीम मूल्य वाला है और सम्मान एवं प्रेम पूर्ण कृपा के योग्य है।"[4] भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, वैधानिक दृष्टि से अपराध है, क्योंकि भारतीय संबिधान जातिवाद के बन्धनों को स्वीकार नहीं करता है। "जातिवाद को विघटन और विध्वंसक शक्ति आज राजनीतिक स्वार्थों से जितनी तीव्रतर हुई है उतनी मध्ययुग के किसी भी अंधे कोने में नहीं रही होगी। उसका कारण यह है कि उस जमाने में कुछ मूल्य बचे थे, जिनके कारण स्तर भेद बराबर दबा रहता था। आज वह मूल्य नहीं रह गए।"[5] परंतु हमें इस प्रकार की समस्याओं का समाधान के लिए वैधानिक प्रावधानों की अपेक्षा वैचारिक दृष्टिकोण में बदलाव लाने की आवश्कता है।

जातिवाद के अतिरिक्त क्षेत्रवाद हमारे देश की ज्वलंत समस्याओं में से एक है यह वह विचारधारा है जो किसी निर्दिष्ट क्षेत्र के छोटे क्षेत्र में सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक या आर्थिक स्वायत्ता की वकालत करती है जो अपने लोगों को क्षेत्र के प्रति अधिक लगाव और आस्था रखते और उसे दूसरे क्षेत्रों से सर्वश्रेष्ठ मानने के लिए प्रेरित करती है। इसके लिए भाषा, धर्म, जाति, आर्थिक असमानता, संस्कृति की भिन्नता आदि क्षेत्रवाद के प्रमुख कारण है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न संस्कृति, भाषा, धर्म, जाति और ऐतिहासिक पहचान के कारण अशिक्षित एवं चंद संकीर्ण मानसिकता वाले लोग क्षेत्रवाद का समर्थन करते हैं। इसके अतिरिक्त कई बार लोग अपने क्षेत्र में आर्थिक समानता, स्वतंत्रता, क्षेत्र की सुरक्षा, विकास की मांग करते हैं। इसलिए कुछ राजनीतिज्ञ उस क्षेत्र में भीड़ को देखते हुए तुष्टिकरण की राजनीति को बढ़ावा देते हुए न चाहते हुए भी क्षेत्रवाद रूपी विचार, धर्म, जाति, राजनीति, भाषा सम्प्रदाय आदि के आधार पर लोगों के बीच विभाजन बढ़ता है। तत्पश्चात समाज में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और भेदभाव उत्पन्न होता है जिससे राष्ट्र की एकता और अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह किसी भी समाज को अनेकता में एकता बनाने की क्षमता को कमजोर करता है जिससे उस समयज के विकास की गति मंद हो जाती है। क्षेत्रवाद के द्वारा समाज में आर्थिक और सामाजिक विषमता भी बढ़ती है जो किसी भी समाज की समृद्धि के लिए धातक है। आज हमारे लोकतंत्र में वाद स्त्री वायरस कश्मीर से कन्यकुमारी और कच्छ से असम तक फैला हुआ है। भारत की मौलिक एकता के संदर्भ में विसेंट स्मिथ का कथन है "बिना किसी संशय के भारत में गहन अंतर्निहित मौलिक एकता है और वह उसे कहीं अगाध है जितनी भौगोलिक अलगाव अथवा राजनीतिक प्रभुसत्ता से आविर्भूत हो सकती है। वह एकता, रक्त, वर्ण (रंग) भाषा, वस्त्रविन्यास, आचार एवं सम्प्रदाय की असंख्य विविधताओं को पार कर जाती है ।"[6] इसलिए भारत जैसे बहुभाषी, बहु जातीय और बहुधर्मी समाज में पुनः मौलिक एकता प्रतिष्ठित करने एवं क्षेत्रवाद को दूर करने के लिए सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक स्तर पर प्रयास किया जा सकते हैं। व्यवस्थित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से जाति, लिंग, धर्म और आर्थिक आय के आधार पर समाज में भेदभाव के खिलाफ आम जनता में जागरूकता फैलानी चाहिए, ताकि क्षेत्रवाद से समस्या को कम किया जा सके। देश के सभी नागरिकों को संविधान द्वारा प्रदत समान अधिकारों को प्रदान करते हुए देश की न्यायपालिका को समस्या के समाधान के लिए सदैव सक्रिय रहना चाहिए। सनातन संस्कृति की एक परम्परा रही है 'वसुधैव कुटुम्बकम' अर्थात सम्पूर्ण विश्व एक परिवार के समान है। लेकिन इसके बावजूद भी विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत में सम्प्रदायिकता की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह एक ऐसी संकीर्ण मनोवृत्ति है जो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर समाज तथा राष्ट्र के विरुद्ध अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रोत्साहित करने के लिए व्यक्ति को व्यक्तिगत हितों के संरक्षण देने की भावना को प्राथमिकता देती है। यह भावना

अपनों के प्रति जड़ अंधभक्तितथा दूसरों के अनुयायियों के प्रति घृणा की भावना पैदा करती है।"जब कभी साम्प्रदायवाद, साम्प्रदायिकता, सम्प्रदायिक दृष्टिकोण शब्दों का प्रयोग किया जाता है, तब उनका अर्थ दो समुदायों में विद्यमान विद्वेष, तनाव, संदेह अथवा संघर्ष के भाव को व्यक्तकरना होता है इस प्रकार का विद्वेष अथवा तनाव धर्म, भाषा अर्थ प्रजाति के तत्वों पर आधारित होता है। भारत के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग विशेषतः विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच अलगाव एवं वैमनस्य के भाव को अभिव्यक्तकरता है।"[7] भारत में सांप्रदायिकता के उदय और विस्तार में ब्रिटिश शासन प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 1857 ई. के पश्चात् अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति ने सांप्रदायिकता का जो स्प धारण किया, इसके लिए मुस्लिम लीग की रणनीति, कांग्रेस की तुष्टिकरण की राजनीति तथा अन्य धार्मिक संगठनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दू मुस्लिम सांप्रदायिकता का मुख्य कारण राजनीति, सामाजिक, आर्थिक स्वार्थ, सांस्कृतिक है, जिन्होंने दोनों समुदायों के बीच घृणा, वैर, द्वेष आदि नकारात्मक वृत्तियों को बढ़ावा दिया। आधुनिक राजनीति में सत्ता प्राप्त करना जनता की आबादी पर निर्भर करता है, इसलिए चंद स्वार्थी राजनीतिज्ञ आम जन के हितैषी बन कर उन्हें विश्वास में लेने के लिए धर्म या संप्रदाय का सहारा लेते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में विखंडन की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। धर्म का प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए न किए जाने की आशा में संविधान में प्रावधान किया गया कि भारत धर्मनिरपेक्ष बना रहेगा । फिर भी चंद स्वार्थी अपने प्रयोजनों के लिए धर्म जाति का प्रयोग करते हैं। किसी भी समाज में व्याप्त सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ ही ऐसी समस्याओं को जन्म देती हैं। यद्यपि देश का बुद्धिजीवी वर्ग इन समस्याओं को दूर करने का प्रयास तो करते हैं लेकिन सफल न होने पर वह दूसरे समुदायों को ही अपनी विफलता का कारण मान लेते हैं। इस तरह के प्रकरण से सांप्रदायिकता की भावना पनपती है। 'जून 1962 में राष्ट्रीय एकता परिषद की स्थाना की गई थी, जिस ने क्षेत्रवाद और सांप्रदायिकता वाद निवारण के लिए दो समितियाँ नियुक्त की थीं। परंतु चीन के आक्रमण ने जिस राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया था, उसने राष्ट्रीय एकता परिषद के कार्य को सीमित कर दिया। परंतु यह एकता एक अल्पकालिक घटना थी और जल्द ही सांप्रदायिक हिंसा ने पुनः जोर पकड़ा, जिस कारण 1968 ई. में राष्ट्रीय एकता परिषद की पुनः रचना की गई। बाद में 1970 तक यह समितियाँ निरुपयोगी हो गई थीं। 'यद्यपि राष्ट्रीय एकता परिषद का समय-समय पर पुनर्गठन किया जाता रहता है। लेकिन वाद हावी होने के कारण यह सफल नहीं हो पा रहा है । क्षेत्रीयकरण सांप्रदायिकता का प्रमुख कारण है। स्वतंत्रता के समय देश की आबादी कुल 34 करोड थी लेकिन वर्तमान में यह आबादी बढ़कर एक अरब चालीस करोड़ हो गई है। देश की जनता को अधिक सुविधा प्रदान करने एवं विकास को सुचारू स्प से चलाने के लिए भारत सरकार नए राज्यों का सृजन करती आ रही है, लेकिन भाषा, जाति, धर्म आदि के आधार पर हिंसक तरीके से राज्यों की मांग जैसे असम में बोडोलैंड, पश्चिमी बंगाल में गोरखालैंड, जम्मू कश्मीर की मांग सांप्रदायिकता को जन्म दे रही है। जबकि सांप्रदायिकता न कोई दर्शन है, न धर्म, न विचारधारा या कोई सिद्धांत, यह केवल राष्ट्रीय को खंडित करने के लिए चंद स्वार्थ लोगों द्वारा रचा गया षडयंत्र है। अमीर खुसरो ने कहा था कि लोग पूछते हैं - कि भारत के प्रति मेरे मन में श्रद्धा क्यों है? भारत मेरी जन्म भूमि और मेरा देश है। भारत में सांप्रदायिकता का आरंभ जिन्ना की राजनीति के साथ शुरू होता है, जिसका परिणाम भारत और पाकिस्तान का विभाजन है। आधुनिक भारतीय समाज में सांप्रदायिकता कई रूपों में क्रियाशील है जिसका दुष्परिणाम घृणित दंगे है। स्वतंत्रता के पश्चात लोकतंत्र में राजनीतिक दलों ने वोट बैंक का आधार जाति, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि को बनाया। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले

सांप्रदायिक हिंसा का प्रमुख कारण ब्रिटिश शासन व्यवस्था को मानते थे, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात सांप्रदायिक हिंसा पहले से कहीं अधिक सक्रिय है । इसके लिए सांप्रदायिक मानसिकता वाले नेताओं को चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित कर उन्हें व्यवस्था के द्वारा दंडित किए जाने का प्रावधान होना चाहिए। सांप्रदायिकता को दूर करने एवं सामाजिक समृद्धि और समरसत्ता को बढ़ावा देने के लिए सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे समाज में समरसत्ता और अनेकता में एकता की भावना बढ़ेगी।

सरकार को देश के नागरिकों के साथ हो रहे भेवभाव की भावनाओं को समाप्त करने के लिए उपाय करने होंगे। इसके लिए समय रहते देश के समस्त बुद्धिजीवियों को गंभीरता से विचार करना होगा कि सांप्रदायिकता जैसी राष्ट्रीय व्याधि और इससे जुड़े विषयों जैसे जातिवाद, क्षेत्रवाद, अलगाववाद और सांप्रदायिकता जैसी समस्याओं को किस प्रकार नियंत्रण करें। 'रविंद्र नाथ ठाकुर ने भारत की ऐसी विशेषता का यशगान किया है । इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में सब कुछ ठीक था। छूआछूत, जात-पात की ऊँच-नीच, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, जादू टोना, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, समुद्र लंघन निषेध आदि न जो कितनी बुराईयों और जड़ताओं ने भारतीय समाज को अपाहिज बना रखा था। लेकिन धर्म की स्वतंत्रता, आध्यात्मिक साधना और विचारों की स्वतंत्रता इस भूखंड की अद्धितीय विशेषता थी"[9] इतनी विशेषताओं के बावजूद भारत में सांप्रदायिकता की समस्या का सूत्रपात मुगल शासकों के आक्रमण से हुआ । जिस का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। आज देश में अल्पसंख्यक समुदाय में बहुसंख्यक समुदाय के प्रति भय स्वाभाविक है। यदि देश को प्रबुद्ध एवं दूरदर्शी सोच रखने वाले नेताओं को नेतृत्व का अवसर मिलता तो जातिवाद, क्षेत्रवाद और सांप्रदायिकता जैसी बीभत्स समस्याएँ आज नहीं होतीं, लेकिन स्वतंत्र भारत में इन समस्याओं की वृद्धि होती गई। इस प्रकार की समस्याओं का निवारण तभी संभव है जब देश का प्रत्येक नागरिक अपनी निजी स्वार्थ को तिलांजलि देकर इन समस्याओं को समझने और उनका मूल्यांकन करने के पश्चात ऐसे उपाय किया जाए ताकि सामूहिक प्रयास से दूर हो सके। यह तभी संभव है जब आम जनमानस समस्याओं को दूर करने के लिए लोगों में जागरूकता पैदा कर परस्पर विचार विमर्श कर समस्याओं के समाधान के लिए सुझाई गई विचारों के परिणामों को व्यवहारिक धरातल पर परीक्षण करें तभी इन समस्याओं का प्रभावी रूप से समाधान होगा।

संदर्भ सूची :-

1. राम अहूजा, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशंस संस्करण 2023, पृष्ठ 2
2. हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशंस जयपुर, संस्करण 2010, पृष्ठ 35
3. श्रीमद्भगवद गीता, स्वामी अपूर्वानंद (संपादक) रामकृष्ण मठ नागपुर, पृष्ठ 126
4. डॉ.राधाकृष्णन, भारतीय संस्कृति कुछ विचार, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 86
5. विद्यानिवास मिश्र, हिंदू धर्म जीवन में सनातन की खोज, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2023, पृष्ठ 88
6. डॉ राधाकृष्णन, भारतीय संस्कृति कुछ विचार, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 83
7. हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशंस जयपुर, संस्करण 2010, पृष्ठ 45
8. राम अहूजा, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, संस्करण 2023, सत्य प्रकाश मित्तल (संपादक) भारतीय समाज एवं संस्कृति परिवर्तन की चुनौती, सांप्रदायिकता और भारतीय संस्कृति, वाराणसी, पृष्ठ 294

सह आचार्य, हिंदी विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश
धर्मशाला, मोबाइल 8894535331

हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान

डॉ पूर्णिमा आर

प्राकृत कालीन जन भाषाओं का एक विकसित रूप है अपभ्रंश।आधुनिक भाषाओं के उदय से पहले उत्तर भारत में बोलचाल और साहित्य रचना की सबसे जीवन्त भाषा थी अपभ्रंश। प्राकृत भाषा से अपभ्रंश की उत्पत्ति मानी जाती है। बौद्ध और जैन धर्म के संस्थापकों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए प्राकृत भाषा का उपयोग किया था। प्राकृत के कथित और लिखित रूपों में लिखित भाषा का विकास रुक गया था। कथित प्राकृत विकसित होकर अपभ्रंश बन गया। अपभ्रंश का अर्थ बिगडी हुई भाषा है।

अपभ्रंश भाषाएँ भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न प्रकार की थीं। भरत के समय तक यह पश्चिमोत्तर भारत की बोली थी। परंतु दसवीं सदी में राजशेखर के समय तक पंजाब,गुजरात,राजस्थान सहित समूचे पश्चिमी भारत की भाषा हो गई। प्रदेश के नाम के आधार पर इसके नामकरण किए गए हैं-नागर, उपनागर, ब्राचड,पूर्वी, पश्चिमी,दक्षिणी,उत्तरीनागर अपभ्रंश गुजरात में व्यवहृत था। लिखित साहित्य में बहुधा नागर अपभ्रंश का नमूना मिलता है। इसका प्रचार पश्चिम भारत में ज़्यादा था। नागर अपभ्रंश में कई बोलियाँ शामिल थीं जो भारत के उत्तर की तरफ प्रायः समग्र पश्चिमी भाग में बोली जाती है।

राजस्थान और पंजाब के दक्षिणी भाग में उपनागर अपभ्रंश का प्रचलन था। ब्राचड अपभ्रंश सिन्ध प्रदेश में प्रचलित था।अपभ्रंश का परिवर्तित रूप है अवहट्ठ।

संस्कृत के ग्रन्थों में अपभ्रंश भाषा को अपभ्रंश या अपभ्रष्ट भाषा कहा गया। नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने अमीरों की बोली को अपभ्रंश कहा है। इन्होंने अपभ्रंश के लिए विभ्रष्ट शब्द का प्रयोग किया है। काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु ने अपभ्रंश को प्राकृत कहा। भामह,दण्डी आदि अपभ्रंश को प्राकृत से भिन्न बताते हैं। दण्डी ने काव्यादर्श में अपभ्रंश को आभीर कहा। अपभ्रंश नाम का सर्वप्रथम प्रयोग वलभी के राजा धारसेन द्वितीय के शिलालेख से प्राप्त होता है। धारसेन ने अपने पिता गुहासेन को संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश का कवि माना। महाभाष्यकार पतंजली ने संस्कृत के लोक प्रचलित शब्दों अथवा विकृत शब्दों को अपभ्रंश की संज्ञा दी। आचार्य दण्डी के अनुसार व्याकरण शास्त्र में संस्कृत से इतर शब्दों को अपभ्रंश कहा जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो पाली, प्राकृत, अपभ्रंश सभी के शब्द अपभ्रंश के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु पाली और प्राकृत को अपभ्रंश नाम नहीं दिया गया।

अपभ्रंश में केवल 8 स्वर थे -**अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ए,ओ** इन्ही स्वरों को मूल स्वर कहा जाता था। आदिकालीन हिन्दी में दो नए संयुक्तस्वर **ऐ** और **औ** भी जोडे गए। अपभ्रंश में **ड,ढ** व्यंजन नहीं थे। बाद में आदिकाल में इनका विकास हुआ।

महत्वपूर्ण विशेषताएँ

अपभ्रंश वियोगात्मक भाषा रही। अपभ्रंश में विभक्तियों के स्थान स्वतंत्र परसर्गों का प्रयोग है। अपभ्रंश में दो वचन(एकवचन,बहुवचन और दो लिंग (पुल्लिंग,स्त्रीलिंग) मिलते हैं। नपुंसक लिंग का लोप,तीन कारकों की व्यवस्था, विभक्तियों का घिस जाना उनके स्थान पर परसर्गों का प्रयोग,अधिक से अधिक देशज शब्दों का प्रयोग आदि अपभ्रंश की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

साहित्य

अपभ्रंश का प्राचीनतम रूप **भरतमुनि के नाट्यशास्त्र** में है। बौद्ध,सिद्ध और नाथ पंथी योगी जैन आदि अपभ्रंश भाषा में रचनाएँ करते थे। अपभ्रंश का सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ कवि स्वयंभू है। स्वयंभू को जैन परंपरा का भी प्रथम कवि कहा जाता है। स्वयंभू को अपभ्रंश का व्यास कहा जाता है।

स्वयंभू के पउम चरिउ (पदम चरित्र),पुष्पदंत का णाअकुमार चरिउ(नागकुमार चरित)धनपाल का भविसियंत कथा(भविष्यत कथा) अब्दुर्रहमान का सन्देश रासक, विद्यापति की कीर्तिलता,कीर्तिपताका आदि अपभ्रंश की श्रेष्ठतम रचनाएँ थीं।

अपभ्रंश के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। अनेक अभी तक हस्तलिखित प्रतियों के रूप में अप्रकाशित पडे हैं। जैन भण्डारों में अनेक ग्रन्थ अभी तक लुप्त पडे हैं। अपभ्रंश साहित्य की प्राप्त रचनाओं का अधिकाँश जैन काव्य है। अपभ्रंश में धार्मिक और इतिहास के महापुरुषों के साथ सामान्य वर्ग के पुरुषों को भी काव्य में नायक बनाया गया। इसके अतिरिक्तअपभ्रंश-साहित्य में जैन-धर्म संबन्धी कथानकों का वर्णन विपुल मात्रा में है।

अपभ्रंश के अधिकाँश काव्यों में श्रृंगार और वीररस से परिपोषित निर्वेदभाव शान्तरस की प्रधानता है।

अपभ्रंश की रचनाएँ अधिकांशतः दोहा छन्द में हुईं। अपभ्रंश में अनेक नए छन्दों का उत्भव हुआ,जिनका संस्कृत में अभाव है। छन्दों के समान नवीन अलंकारों को भी अपभ्रंश ने जन्म दिया। अलंकार संबन्धी अपभ्रंश के ग्रन्थों का अभाव है।

सन्देश रासक

अपभ्रंश की रचनाओँ में अपूर्व विशेषताओंवाली रचना है सन्देश रासक। कवि ने प्रस्तावना में ही कहा है उसका यह काव्य रसिकों के लिए रससंजीवनी रूप और अनुरागी के लिए पथदीपरूप है।

आधुनिक भाषाओं के विकास में अपभ्रंश की भूमिका

भारत की प्रचलित आर्य भाषाएँ न संस्कृत से निकली हैं, न प्राकृत से किन्तु इसका विकास अपभ्रंश से हुआ। दसवीं शताब्दी के लगभग अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओँ का विकास हुआ। आधुनिक भाषा के निर्माण में अपभ्रंश की बडी भूमिका है। जैसे-शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी,राजस्थानी और गुजराती भाषा की उत्पत्ति हुई। महाराष्ट्री से मराठी भाषा,अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी की भाषा,मागधी अपभ्रंश से भोजपुरी,मैथिली,बंग्ला,उडिया। असमिया की पैशाची अपभ्रंश से पंजाबी,लहंदा तथा ब्राचड़ अपभ्रंश से सिंधी की उत्पत्ति हुई।

ध्वनि संरचना,व्याकरणिक संरचना और शब्द भण्डार के स्तर पर हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान महत्वपूर्ण है।

1. संस्कृत की जटिल ध्वनियों का सरलीकरण अपभ्रंश में हो गया था। संस्कृत की जटिल ध्वनियों का हिन्दी में अभाव है।/2. नासिक्य व्यंजनों (ङ,ञ,ण,न,म) के स्थन पर अनुस्वार के उपयोग की प्रवृत्ति का विकास।/3.नीलकण्ठ का नीलकंठ, गङ्गा का गंगा।/ 4. ऋका विकासअ,इ,उ,ए तथा रि के रूप में हुआ।/5. ट वर्ग में ड़ और ढ़ ध्वनियों का विकास। ये ध्वनियाँ अपभ्रंश की देन हैं। जैस / 6.लड़की,भेड़िया,बढ़ई।/7.संस्कृत के नपुंसक लिंग की समाप्ति/8.द्विवचन बहुवचन में शामिल हो गया।

अपभ्रंश ने संस्कृत के जटिल शब्दों का सरलीकरण किया। हिन्दी को तद्भव शब्दों का भण्डार मिला। घरेलु जीवन से संबन्धित देशज शब्दों का विकास शुरु हुआ।

अपभंश का संबन्ध आदिकाल से था। संस्कृत के जटिल शब्दों का सरलीकरण अपभ्रंश ने किया। हिन्दी में तद्भव शब्दों का प्रयोग होने लगा। देशज शब्दों का विकास प्रारंभ हुआ। हिन्दी के विकास में अपभ्रंश पहली कडी रही। इसके विकास में अपभ्रंश की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

ग्रन्थ-सूची - आधार-ग्रन्थ

1. हिन्दी भाषा का विकास -डां.भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग
3. अपभ्रंश भाषा साहित्य की शोध-प्रवृत्तियाँ (गूगल पुस्तक,लेखक -डां.देवेन्द्र कुमार शास्त्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास -आचार्य.रामचन्द्र शुक्ल

असोसियेट प्रोफसर, हिंदी विभाग
सनातन धर्मा कॉलेज, आलप्पुष़ा

भाषा कौशल : रूपांतरण प्राप्त करने की प्रभावी कुंजी

लेफ्टिनेंट मेधा तड़वी और प्रो दीप्ति ओझा

सारांशः मनुष्य का मूल स्वभाव परिवर्तन प्रगति और जीवन में स्थांतर लाना है। स्थांतर किसी व्यक्ति की आवश्यकताओं, उद्देश्यों और प्रयासों के आधार पर हो सकता है। शिक्षा में, स्थांतर तीन प्राथमिक क्षेत्रों के माध्यम से संभव है, संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोदैहिक। इन क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों को प्राप्त करने के लिए भाषा सबसे प्रभावशाली उपकरण है। किसी व्यक्ति की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि, वह विभिन्न कौशलों का कितने प्रभावी ढंग से उपयोग करता है, जिसमें भाषा कौशल सबसे महत्वपूर्ण है। 21वीं सदी में, मानव ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, समाज, संस्कृति, कला और साहित्य जैसे क्षेत्रों में नवाचारों को एकीकृत किया है। इन उपलब्धियों और नवाचारों को भाषा के माध्यम से निर्मित और प्रस्तुत किया जाता है। मनुष्य विचारों को श्रवण और पठन कौशल के माध्यम से प्राप्त करते हैं, और वे उन्हें कथन और लेखन कौशल के माध्यम से व्यक्तकरते हैं। श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल जीवन के हर पहलू में परिवर्तन लाने की शक्तिशाली कुंजी हैं। जीवन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि, व्यक्ति भाषा कौशल का सही समय पर, सही तरीके से, सही जगह पर और सही व्यक्ति के साथ कितना अच्छा उपयोग करते हैं। मनुष्य समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग हैं, और वे भाषा के माध्यम से दूसरों के साथ संवाद करके समाज में व्यव्हार करते हैं। 2020 भारतीय शिक्षा नीति भी भारतीय भाषाओं के महत्व पर जोर देती है। यह व्यक्तियों को खुद को अभिव्यक्तकरने, क्षमता निर्माण करने और खुद को सुचारु रूप से प्रस्तुत करने में मदद करता है। इस प्रकार, भाषा कौशल परिवर्तन लाने की प्रभावी कुंजी है।

संकेताक्षरः भाषा कौशल, स्थांतर, श्रवण, कथन, पठन और लेखन का अंतर्संबंध, गतिशील भूमिका, ज्ञान प्राप्त करना, मानव जीवन

प्रस्तावना : शिक्षा मनुष्य को जीवन के प्रत्येक पहलू में सशक्त बनाती है। भाषा शिक्षा शैक्षणिक, सामाजिक, भावनात्मक और समग्र रूप से रूपांतर ला सकती है। यह व्यक्ति के विचारों, वाणी, व्यवहार और व्यक्तित्व में झलकता है। भाषा व्यक्ति के विचार, चिंतन और गुणों को प्रकट करती है। लोग अक्सर अनजाने में भाषा के उपयोग के आधार पर दूसरों का मूल्यांकन करते हैं, उन्हें अन्य चीजों के अलावा नम्र, विनम्र, आक्रामक, दार्शनिक या अच्छे इंसान के रूप में स्वाभाविक रूप से नामकरण करते हैं। इस प्रकार, शिक्षा, समाजीकरण और व्यावसायिकता के लिए भाषा मानव जीवन का केंद्र है। यह सोचने, कल्पना करने, संचार करने, बातचीत करने, प्रतिक्रिया दर्शाने, विश्लेषण करने, व्यक्तकरने और निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संक्षेप में कहें तो समग्र मानव जीवन में भाषा की गतिशील एवं प्रभावशाली भूमिका होती है।

श्रवण - कथन - पठन - लेखन : भाषा कौशल का आंतर्संबंध

भाषा कौशल सभी भाषाओं का सार्वभौमिक आधार है। मनुष्य जन्म से पहले ही श्रवण के माध्यम से भाषा से जुड़ना शुरू कर देता है। बच्चे सुनकर बोलना सीखते हैं, जिससे उन्हें शब्दों का उच्चारण करने में मदद मिलती है और अंततः वे पढ़ना सीखते हैं। सुनना और पढ़ना ग्रहणशील कौशल हैं, जबकि बोलना और लिखना अभिव्यंजक कौशल

हैं। ये श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल संबंधित, अन्योन्याश्रित और परस्पर जुड़े हुए हैं, अक्सर एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह काम करते हैं। उदाहरण के लिए, मौखिक पढ़न में बोलना शामिल है, और सुनने में किसी को एक साथ बोलना शामिल है। जब कोई व्यक्ति पढ़ता है, तो वह सुने हुए शब्द या लिखित पाठ को याद करता है, और लिखते समय, वह विचारों, चिंतन और बोले गए शब्दों को एकीकृत करता है। इस प्रकार, श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल आपस में जुड़े हुए हैं।

मानव जीवन में श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल की गतिशील भूमिका : भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। हम भाषा के प्रयोग के आधार पर किसी व्यक्तिके विभिन्न आयामों की पहचान कर सकते हैं। पांडा (2017) ने उल्लेख किया कि, भाषा संचार की एक जटिल प्रणाली को प्राप्त करने और उपयोग करने की क्षमता है, विशेष रू प से ऐसा करने की मानवीय क्षमता है। रूसो जैसे विचारकों ने तर्क दिया कि भाषा की उत्पत्ति तर्कसंगत और तार्किक विचार से हुई है। मानव भाषा में उत्पादकता, पुनरावर्तीता और विस्थापन गुण होते हैं, जो पूरी तरह से सामाजिक बातचीत और सीखने पर निर्भर होती है। इसी प्रकार, लेखक ने भाषा के उचित उपयोग के माध्यम से सामाजिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और व्यावसायिक विकास का अनुभव किया है। इस शोध पत्र को लिखने का उद्देश्य भाषा कौशल का उपयोग करके भाषा का उत्सव मनाना है। भाषा जीवन के हर चरण में प्रगति, उपलब्धियों, अच्छे रिश्तों, बेहतर सामाजिक जीवन और सार्थक जीवन के लिए सहायक होती है, जिससे व्यक्ति खुद को और दूसरों को उचित रूप से समझने में सक्षम हो जाता है। इस प्रकार, भाषा कौशल मानव जीवन के विभिन्न आयामों के साथ एक गतिशील व्यक्तित्व बनाने की शक्ति रखता है।

ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए एक उपकरण के रूप में भाषा : मनुष्य किसी भी विषय में उस विषय की विशिष्ट भाषा का उपयोग करके ज्ञान या कौशल प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक विषय की अपनी भाषा, संरचना, प्रकृति और दर्शन होता है। इसकी बेहतर समझ से व्यक्तिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ग्रहणशील भाषा कौशल पर अच्छी पकड़ रखने वाले लोग अपनी विचार प्रक्रियाओं को बदल कर समझ सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, विश्लेषण कर सकते हैं, संश्लेषण कर सकते हैं, निर्माण कर सकते हैं और आलोचना कर सकते हैं। अभिव्यंजक कौशल व्यक्तियों को अपने विचार, चिंतन, इच्छा और महत्वाकांक्षा को व्यक्त करने का अवसर देते हैं। पांडा (2017) ने उल्लेख किया कि रूसो जैसे विचारकों ने तर्क दिया कि भाषा की उत्पत्ति तर्कसंगत और तार्किक विचार से हुई है। इसी प्रकार, स्वयं को अभिव्यक्तकरने, समझने और दूसरों द्वारा समझे जाने के लिए भाषा का उपयोग करना एक मानव सहज स्वभाव है।

भाषा कौशल क्षमता निर्माण को प्रोत्साहित करते हैं: एल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड वेव' में उल्लेख किया है, आने वाले वर्षों में, लोगों के पास बोलने पर अच्छी पकड़ हो सकती है, लेकिन लिखने में उतने कुशल ना भी हो सके। लेखन के लिए विभिन्न पहलुओं या संदर्भों के साथ विषय के अनुसार रचनात्मक रूप से शब्दों को एकीकृत करने, सोचने, महसूस करने, व्यवस्थित करने, जोड़ने, संश्लेषण करने, कल्पना करने, व्याख्या करने, आलोचना करने और शब्दों का उपयोग करने की क्षमता और इसका प्रयोजन करने की क्षमता की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया विशिष्ट क्षेत्र, आवश्यकता या उद्देश्य के अनुसार विचारों को उचित या वांछनीय रूप से व्यक्त करने के लिए अतिरिक्त प्रयास की मांग करती है। इस प्रकार, भाषा का उपयोग क्षमता निर्माण, विभिन्न उप-

कौशलों को बढ़ाने का अवसर प्रदान करता है। अतिरिक्त प्रयास के साथ भाषा का उपयोग करने की यह उत्पादक प्रक्रिया व्यक्तियों को उत्पादक कार्य करने की क्षमता बनाने के लिए प्रोत्साहित करती है

मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल का प्रभाव : भाषा सीखना और उसका प्रयोग एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार आकर्षण का नियम काम करता है, उसी प्रकार भाषा का प्रयोग भी हमारे विचारों और कार्यों पर प्रभाव डालता है। जब कोई व्यक्तिसुनता और पढ़ता है, तो यह उनकी विचार प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है। यह, बदले में, उनके बोलने, लिखने और अन्य कार्यों में परिलक्षित होता है। सुनने और पढ़ने के माध्यम से, मनुष्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विचारों को समझते हैं, जिन्हें फिर उनके कौशल और उत्पादक कार्यों के माध्यम से व्यक्तकिया जाता है। सकारात्मक या नकारात्मक पुष्टि में भाषा का उपयोग मनोदशा, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, व्यवहार और कार्यों पर प्रभाव डालता है। यह वांछनीय बातचीत और आत्मनिरीक्षण के माध्यम से स्वयं और दूसरों के साथ संबंधों को मजबूत करने में मदद कर सकता है। यह मनुष्यों को उचित दृष्टिकोण के साथ पहुँचने योग्य बनने में मदद करता है, जिससे उनकी क्षमता, दक्षता और योग्यता मजबूत होती है। इस प्रकार, भाषा व्यक्तिके जीवन में सूक्ष्म और स्थूल स्तर पर मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभाव डालती है। यह कार्यों को उत्साहपूर्ण रूप से पूरा करने की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है, जिसके परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक पहलुओं के साथ भाषा के वांछनीय उपयोग के माध्यम से फलदायी परिणाम प्राप्त होते हैं।

सफलता प्राप्त करने में भाषा कौशल की उत्प्रेरक भूमिका : आज के युग में कौशल, प्रतिभा और प्रदर्शन का प्रस्तुतीकरण महत्वपूर्ण है। भाषा का उचित प्रयोग और अलंकारों के साथ उसकी अभिव्यक्ति भी आवश्यक है। हालाँकि, यदि यह हार्दिक या वास्तविकता पर आधारित नहीं है तो यह बहुत प्रभावी नहीं है। केवल शब्दों, विचारों और भावनाओं के सौंदर्यीकरण से अधिक महत्वपूर्ण मौलिकता के साथ रचनात्मकता है। भाषा का सही समय पर, सही तरीके से, सही परिस्थिति में और सही व्यक्तिके साथ प्रयोग करने से सफलता मिल सकती है। उद्देश्यों को प्राप्त करने और कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक ज्ञान और अभिव्यंजक कौशल के माध्यम से इसका प्रतिनिधित्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भाषा स्वयं और दूसरों के साथ संचार के माध्यम से नवाचार और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है।

आनंद के लिए भाषा : प्रसन्न रहना सफलता का उच्चतम स्तर है, इसलिए आम तौर पर हर इंसान खुश रहना चाहता है। भाषा का उपयोग आनंदमय होना चाहिए, जिसका प्रभाव दैनिक जीवन, शैक्षणिक विकास, व्यावसायिक उन्नति, रिश्तों और उपलब्धियों पर प्रभाव डालता है। श्रवण, कथन, पठन और लेखन कौशल के उप-कौशल आत्म-विकास में सहायक हैं और एक फलदायी एवं सार्थक जीवन में योगदान करते हैं। भाषा कौशल क्षमताएँ जीवन के हर हिस्से में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अक्सर वे व्यक्तिमें छुपी हुई प्रतिभाओं और कौशलों को उजागर कर देते हैं। साहित्य के विभिन्न रूप, जैसे कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ और अन्य प्रकार, मानव स्वभाव को प्रभावित करते हैं, जीवन को बेहतर बनाने के लिए उनकी प्राथमिकताओं और विकल्पों का पोषण करते हैं। उदाहरण के लिए, नाटक आनंद ला सकता है, महत्वपूर्ण संदेश दे सकता है और आनंद और मनोरंजन के माध्यम से जीवन में वांछनीय परिवर्तन ला सकता है। जैसा कि कहा गया है, "हम खुशी नहीं खरीद सकते, लेकिन हम एक किताब खरीद सकते हैं, और एक किताब खुशी ला सकती है।"

भाषाः समाज, संस्कृति और मानवता का अभिन्न अंगः भाषा समाज एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। प्रत्येक भाषा सांस्कृतिक मूल्यों और जीवनशैली को प्रतिबिंबित करती है। वास्तव में, भाषा समाज और संस्कृति का पोषण करती है, जैसे समाज और संस्कृति भाषाओं का पोषण करती है। भाषा का अपना सौंदर्य और समाज में विशिष्ट स्थान होता है। नई शिक्षा नीति भारतीय भाषाओं के महत्व पर जोर देती है, उनकी मौलिकता और सुंदरता को उजागर करती है। साहित्य समाज और संस्कृति का दर्पण होने के कारण विरासत और अतुल्य पहलुओं को ऐतिहासिक रूपों में संरक्षित करता है।

निष्कर्ष : अंततः, मानव स्वभाव जीवन में परिवर्तन चाहता है। अवलोकन, अनुभव, कार्यान्वयन और शिक्षण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि परिवर्तन के अवसर पैदा करने के लिए भाषा एक प्रभावी उपकरण है। यह परिवर्तन व्यक्ति की आवश्यकता, उद्देश्य और प्रयासों के आधार पर तीनों क्षेत्रों संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मनोदैहिक-में संभव है। भाषा कौशल मनुष्य को जीवन के हर पहलू में आगे बढ़ने और मजबूत करने का वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार, भाषा कौशल एक व्यक्ति की दक्षता और क्षमता को बढ़ाकर उसे समाज का सक्षम और उत्पादक सदस्य बनाता है।

संदर्भ ग्रंथः

कैरोल, जे.बी. (1956) भाषा विचार और वास्तविकताः बेंजामिन ली के चयनित लेखन। न्यूयॉर्क जॉन विली एंड संस.

चांद भारती (2017)। पाठ्यक्रम में भाषाः हैदराबाद, नीलकमल प्रकाशन प्रा. लिमिटेड

कौर और कल्सिया (2017) पाठ्यचर्या में भाषाः नई दिल्ली ए.पी.एच. प्रकाशन निगम.

राव, पी (2016) पाठ्यक्रम दृष्टिकोण, प्रक्रियाओं और कौशल में भाषा। नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स

विडोसन, एच.जी. (1978)। भाषा को संचार के रूप में पढ़ाना। लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

लेफ्टिनेंट मेघा तड़वी

आसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा केंद्र,

भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, गांधीनगर.

प्रो. दीप्ति ओझा

पूर्व प्रोफेसर, शिक्षा एवं मनोविज्ञान संकाय,

शिक्षा विभाग,

महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ़ बरोडा,

वडोदरा.

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

चौदहवाँ देवपद - कलालोक

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

प्रोफेसर श्री वी कृष्णन तंपी ने तिरुवनंतपुरम नगर में सर्वप्रथम कथकली क्लब की स्थापना की थी। भारत के अनगिनत नृत्य-नृत्यों का परिचय कराने तथा केरल की प्रामाणिक प्राचीन कलाओं के आस्वादन एवं प्रचार-प्रसार के लिए 'मार्गी' नामक एक संगठन भी रूपायित किया गया। प्रमुख इंजनीयर श्री डी अप्पुक्कुट्टन नायर ने इसका नेतृत्व किया था। उनके दफ्तर में ही इसकी प्रारंभिक चर्चाएँ भी हुई थीं। श्री के वी कोच्चनियन, श्री टी एन एन भट्टतिरिप्पाडु, श्री के रामचंद्रन, श्री रामय्यर और मैंने उसमें भाग लिए थे। "मार्गी" का सबसे पहला कार्यक्रम कूटियाट्टम (नाट्यशास्त्र के नियम के अनुसार केरल के मंदिरों में अवतरित किए जानेवाला विशिष्ट संस्कृत नाटक का अभिनय) था। यह तीन दिन का कार्यक्रम था और केरल कलामण्डलम के गुरु श्री पैंकुलम राम चाक्यार तथा उनके शिष्यों ने इस कला का उज्ज्वल अवतरण कर हमारी कलात्मक कर्म-पद्धतियों का श्रीगणेश किया था। इतना ही नहीं, कूटियाट्टम नामक कला के बारे में वक्तृता वी जे टी हॉल विवेकानंद इंस्टिट्यूट, हिंदू-धर्म-ग्रंथशाला इत्यादि सभागृहों में बीच बीच में कूत्तु तथा कूटियाट्टम के अवतरण किए गए। गुरु श्री अम्मन्नूर माधव चाक्यार ने हिंदू धर्म ग्रंथशाला के सभागृह में चालीस दिन तक 'पुरुषार्थ कूत्तु' का अवतरण किया था। (कूत्तु माने केवल एक ही अभिनेता रंगमंच पर आकर श्लोकों का उद्धरण विश्लेषण एवं व्याख्या बड़े सरस ढंग से करते हुए अभिनय भी करता है। इसके लिए विशेष रचनाएँ भी हुई हैं; उदाहरण : 'रामायण प्रबंध।')

मार्गी में कथकली सिखाने की व्यवस्था हुई और सुप्रसिद्ध आचार्य श्री मांकुलम विष्णु नंपूतिरि के नेतृत्व में कथकली का अवतरण, उसकी चर्चाएँ आदि हुईं। दूसरे प्रमुख आचार्य श्री कलामंडलम कृष्णन नायर भी इस संस्था में आकर कथकली सिखाने लगे। श्री बिरजू महाराज का कथक नृत्य, केरल कलामण्डलम की विद्यार्थिनियों का मोहिनियाट्टम और मोहिनियाट्टम नामक नृत्य के बारे में श्री के एस नारायण स्वामी का सोदाहरण वक्तृता, वीणा-वादन इत्यादि भारत की श्रेष्ठ प्रामाणिक कलाओं का अवतरण एवं आस्वादन मार्गी नामक हमारी इस संस्था के द्वारा संपन्न हुए। हर साल बहुसंख्यक आस्वादकों के समक्ष केरल की ही नहीं; बल्कि भारत की विशिष्ट कलाओं का अवतरण हुए और इन विषयों पर विद्वानों के लिखे निबंधों को समाहित कर स्मारक ग्रंथ भी प्रकाशित किए गए। श्री डी अप्पुक्कुट्टन नायर की कर्मठता, तीव्र बुद्धि एवं क्रियाशीलता ने मार्गी को उन्नत कला-संस्था के पद पर प्रतिष्ठित किया। जब तक वे जीवित रहे थे तब तक मार्गी उत्तरोत्तर पुष्कल होते आगे बढ़ते रहे थे। 1996 अप्रैल के चौदहवीं को दिल का दौरा पड़ने से उनका अप्रत्याशित निधन हो गया। तब से मार्गी का वसंत ऋतु अस्तगामी हो गया।

(क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

मेरे मन पसंद तेंङ्ङाप्पीरा (धज्जा हुआ नारियल) और चीनी दे देतीं। जब क्रुद्ध हो जाती थीं तब जो मुँह में आती ज़ोर से कह देती थीं। कुछ क्षणों के बीतते ही कहे पर पश्चाताप भी करतीं। फिर शाप मोक्ष होगा... प्यार से दम घुटा देतीं। मैं भी अपनी माँ के समान हूँ। पर माँ ने अपने परिवार की सीमा के अंदर रहकर ही बातें कीं और शाप दीं। लेकिन मैंने साहित्यिक क्षेत्र और सिनेमा क्षेत्र में रहकर ही वर्ताव किया और बातें कीं। उसे रहने दें।

मेरी दादी की एक बहन (चात्तु तंपी की दूसरी बहन तेवियम्मच्ची (देवकिक्कुट्टि तंकच्ची) बचपन से ही कविता लिखकर स्वयं गाया करती थीं। उन्होंने शास्त्रीय संगीत भी सीखा था। तंकच्चियों के लिए उनकी कला प्रस्तुतियों को हवेली के अंदर ही प्रस्तुत करने की अनुमति थी। सभी को गाना सिखाया जाता था। पर वह सिर्फ पतियों को आनंदित करने और बच्चों को लोरियाँ गाकर सुनाने के लिए। बाहर जाकर गाने और नृत्य करनेवाली 'अभिसारिकाएँ' मानी जाती थीं। कविता लिखकर गानेवाली उस चाची से शादी करनेवाले हरिप्पाट्टु गाँव एवं पल्लिप्पाट्टु गाँव के बीच में स्थित तलत्तोट्टा मंदिर का पुजारी एक नंपूतिरी था। कविता एवं संगीत के प्रति पत्नी के आवेग को, संस्कृत पंडित भी रहनेवाले उस नंपूतिरी ने 'सिरफिरा स्त्री का पागलपन' समझ लिया था। खडे खडे निमिष कवितायें विविध रागों में गाने वाली पत्नी को उसने छोड दिया। इस प्रकार उसने कविता और संगीत के प्रति प्रतिकार के रूप में स्वजाति से एक अंतर्जनं (नंपूतिरि लडकी) से शादी की। कविता और संगीत केवल पुरुषों की कलाएँ हैं और इस क्षेत्र में आनेवाली स्त्रीयों को बद्तमीज एवं दुराचारी माननेवाले एक विभाग का सिर्फ प्रतिनिधि था वह मूर्ख नंपूतिरी।

तेवि तंकच्चि नामक उस कलाकार को पति वियोग ने झकझोर डाला। रात और दिन खाना खाये और सोये बिना पुत्तूर हवेली के आँगन में, बरामदे में, तालाब के तट पर और सर्पों से भरे जंगली मंदिर में निमिष कविताओं का गाकर वह दादी असल में ही पागल बन गई। विवश होकर घर के बाहर एक छोटी नारियल के पत्तों की झोंपडी बनाकर दादी को बंधनस्त करके उसमें छोड़ दिया गया। बर्फ, वर्षा और धूप लगकर प्रकृति से प्रेम करके और प्रकृति से झगड़ा करके उस छोटी झोंपडी में पडकर नई नई कवितायें गाती हुई वह दादी मर गईं।

कभी कभी मुझे लगता है कि वह दादी मेरे द्वारा अब भी ज़िंदा रहती हैं। कभी न देखे गए उस दादी माँ को बीच बीच में विभिन्न रूपों में मैं सपनों में देखा करता हूँ। बचपन से ही संगीत के द्वारा ही मेरे मन में कविता जन्म लेती थी। ग्यारहवें वर्ष की आयु में लिखे 'कुन्नुं कुषियुम' (पहाड़ और गड्ढा) नामक प्रथम कविता भी मैंने गाकर ही लिखा था; बिना संगीत पढ़े ही। माँ के चाचा रूपी चात्तु तंपी के काल तक पुत्तूर परिवार की लडकियों को क्षत्रिय और नंपूतिरी लोग ही विवाह करते थे। 'संबंधं' (विवाह)

नामक रीति हमारे परिवार में नहीं थी। परिवार से शादी करनेवाले नंपूतिरी का, अन्य किसी से रिश्ता व्यक्त होने पर वह रिश्ता तोड़ दिया जाता था और अन्य किसी से विवाह कराता था। उसी तरह लडकियों का विवाह कराके पति के घर भेजने की रीति भी नहीं थी। शादी करनेवाला व्यक्ति उसके मृत्युपर्यंत पत्नी के घर में रहना चाहिए।

माँ के पिताजी ही पुत्तूर घर से शादी करनेवाले प्रथम नायर थे। उस परिवर्तन के लिए पहला कदम उठानेवाला एक बड़े घराने का नंपूतिरी ही है, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। मेरे चाचाजी के पिताजी (चात्तु तंपी के भी पिताजी) वैरामना माधवन पोट्टि ही वह बागी था। हरिप्पाट्टु से आलप्पुष़ा को जाने वाले रास्ते में पाँच किलोमीटर दूर स्थित करुवाट्टा नामक स्थान पर वैरामना नामक मेरे एक रिश्तेदार का घर अब भी मौजूद है। माधवन पोट्टि, कुञ्जुलक्ष्मी तंकच्ची को विवाह करके रिश्तेदारों और रूढ़ीवादी नंपूतिरियों के विरोध का उल्लंघन करके पुत्तूर घर में आकर रहे। नंपूतिरि अगर नायर को छूकर खाएगा तो जाति भ्रष्ट होने की धमकी होने पर, मेरे दादाजी माधवन पोट्टि ने ऐसा कहाः ठीक है तो मैं नायर बन जाऊँगा। मेरी संतानों की जाति है न? कोई बात नहीं। नायर स्त्रियों से शारीरिक संबंध रखकर बच्चे पैदा कर सकते हैं। पर उनका बनाया भोजन खा नहीं सकता। अपने बच्चों को पुचकार नहीं सकता। यही तत्कालीन नंपूतिरियों का दृष्टिकोण था। इसको ही वैरामना माधवन पोट्टि नामक प्रगतिशील व्यक्ति ने तोड कर फेंक दिया था। तंपियों ने उनसे भी आदर भाव प्रकट किया। मात्र उनके लिए शाकाहारी भोजन बनाने के लिए एक नंपूतिरी को ही नियुक्त किया। चात्तु तंपी नामक पुत्र को और चार पुत्रियों को गोदी में बिठाकर, पुचकार कर, एक आदर्श पिता बनकर वैरामना माधवन मोट्टि पुत्तूर घर में रहे।

जैसे पहले सूचित किया है, लडकियों की शादी की उम्र दस वर्ष थी। पति घर में रहने के बाद ही लड़की को ऋतुमती बनना चाहिए। यही नियम है। वैरामना माधवन नंपूतिरी की तीनों बेटियों का विवाह दसवें साल में ही हुआ। सब से छोटी बेटी का विवाह नहीं हुआ। मेरी चाची कुंञुक्ट्टी तंकची को ही कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्ला नामक नायर ने विवाह किया।

कायंकुलत्तु के पास एरुवा नामक स्थान के एक जमींदार परिवार था कैतोलेत्तु परिवार। राजशासन के जमाने में अदालत के अधिकारियों को गाँव में महत्वपूर्ण स्थान था। कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्ला ज़मींदार परिवार के सदस्य और अदालत का अधिकारी था। एक दिन मित्रों के साथ हरिप्पाडु सुब्रह्मण्य मंदिर में दर्शन के लिए आकर उन्होंने सुवर्ण रंग के अतिसुंदर एक लडकी को नौकरानी के साथ प्रदक्षिणा करते हुए देखा। लडकी के साथ आई नौकरानी से वेलुप्पिल्ला ने उसके बारे में पूछताछ कीः "वैरामना माधवन पोट्टि की बेटी। पुत्तूर चात्तु तंपी की बहन।"

कैतोलेत्तु वेलुप्पिल्ला सीधे पुत्तूर मठ में पहुँचाता है। कुछ भी सोचे बिना धडाधड माधवन पोट्टि से कहता है - "उस लड़की को मुझे विवाह करके दे दो।"

पोट्टि ने पुत्र चात्तु तंपी को देखा। चात्तुतंपी ने कहाः इस परिवार की किसी भी लड़की को आज तक नायर व्यक्तियों को शादी करके नहीं दिया है।" तब वेलुप्पिल्ला का जवाब-"वह तो अच्छा ही हुआ। तब तो पहला नायर मैं ही तो बन जाऊँगा।"

माधवन पोट्टि को वह नायर युवक बहुत पसंद आया। पर कुछ नहीं कहा। बिदा लेने से पहले वेलुप्पिल्ला ने एक शब्द बाण भी चलाया : "अगर तुम इस लड़की को मुझे शादी नहीं करके दोगे तो मैं उसे अपहरण करके ले जाऊँगा।"

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'सादर आपका' किसका नाटक है?
2. 'वैष्णव जण तो' किसकी कविता है?
3. 'साहित्य का विवेचन' किसका ख्यातिप्राप्त लेख है?
4. व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदीजी ही थे - किसका कथन है?
5. 'सुधियाँ उस चंदन के वन की' - किसकी संस्मरणात्मक रचना है?
6. 'सिंह सेनापति' किसका उपन्यास है?
7. 'चिठिया हो तो हर कोई बाँचै' किस विधा की रचना है?
8. लताइफ-इ-हिंदी किसकी रचना है?
9. नेमिनाथरास किसकी रचना है?
10. गगन हमारा बाजा बाजे, मतर फल हाथी - किसकी पंक्ति है?
11. ज़ॉक लकां को किस वाद विशेष से जोड़ा जाता है?
12. 'नृसिंह' पत्रिका के विख्यात संपादक कौन थे?
13. 'प्रसाद की नाट्यकला' किसकी आलोचनात्मक रचना है?
14. 'आर्यावर्त्त' किसकी प्रबंधात्मक रचना है?
15. 'लेखक की ज़मीन किसकी रचना है?
16. छायावाद की प्रणयानुभूति पर रीतिकालीन श्रृंगार चित्रण का काफ़ी प्रभाव है - किसका कथन है?
17. देशभक्त लाला लजपतराय - किसकी रचना है?
18. औ मन जानि कबित अस कीन्हा - किसकी पंक्ति है?
19. नगेंद्र के अनुसार भारतीय सूफी मुख्यतः किस संप्रदाय के हैं?
20. 'एक और द्रोणाचार्य' किसका प्रसिद्ध नाटक है?

उत्तर

1. दया प्रकाश सिन्हा
2. नरसी मेहता
3. श्यामसुंदर दास
4. रामचंद्र शुक्ल
5. श्री विष्णुकांत शास्त्री
6. राहुल सांकृत्यायन
7. पत्र साहित्य
8. लल्लूलाल
9. सुमतिगणि
10. जंभनाथ
11. उत्तर संरचनावाद
12. अंबिका प्रसाद वाजपेयी
13. रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख'
14. मोहनलाल महतो वियोगी
15. गोविंद मिश्र
16. नगेंद्र
17. मन्मथनाथ गुप्त
18. जायसी
19. बेशरा संप्रदाय
20. शंकर शेष

केरल हिन्दी प्रचार सभा के विद्यालय श्रीचित्रा पब्लिक स्कूल के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन श्री.वी.शशि एम.एल.ए. कर रहे हैं।

किषुविलम पंचायत की अध्यक्ष श्रीमती रजिता मुख्य भाषण कर रही हैं।

छात्रों के मनोरंजन कार्यक्रमों के दृश्य।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-03-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI
MARCH 2025

Vol. No. 61, Issue No.12
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

छात्रों के मनोरंजन कार्यक्रमों के दृश्य।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam